प्रकरण - ३

भारतीय संगीत में स्वरलिपि पद्धती का इतिहास :एक संक्षिप्त अध्ययन

भारतीय संगीत में स्वरलिपि पद्धती का इतिहास :एकं संक्षिप्त अध्ययन

इस प्रकरण में हम मुख्य रूप से उस्ताद मौलाबक्ष की स्वरलिपि के विषय में चर्चा करेंगे, परंतु उसके साथ-साथ भारतीय संगीत का, भारतीय संगीत की स्वरलिपि का इतिहास, स्वरलिपि की आवश्यकता, उसके तत्व, उसके लाभ-हानियाँ इत्यादि के विषय में भी यहाँ चर्चा की जायेगी साथ ही साथ उस्ताद मौलाबक्ष जी की स्वरलिपि को समझने के साथ ही साथ उनकी स्वरलिपि की तुलना पं.भातखंडे जी तथा पं.पलुस्कर जी की स्वरलिपि से की जायेगी ।

"स्वरलिपि" यह आज संगीत की न केवल आवश्यकता है । परंतु ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू बन चुके हैं । "स्वरलिपि" यह प्रारंभिक विद्यार्थी, तथा सभी स्तर के विद्यार्थी, कलाकार, अध्येता, शोधार्थी के लिये एक आशीर्वाद, एक अभ्यास व एक शोध का रोचक विषय बना हुआ है । "स्वरलिपि" ने ही हमें हमारी प्राचीन संस्कृति को लुप्तप्रायः होने से बचाया तथा हमें हमारी प्राचीन संस्कृति को सीखने का, समझने का अवसर भी प्रदान किया है ।

किसी गाने की कविता अथवा वाद्य पर बजाये जाने वाली गत को स्वर और ताल के साथ जब लिखा जाता है, तब उसे स्वरलिपि कहा जाता है । प्राचीन काल में भारत में लगभग २५० ई.स.अर्थात् पाणिनि के समय से पहले ही स्वरलिपि पद्धति विद्यामान थी, जिसके प्रमाण हमें प्राचीन भारतीय ग्रंथों में प्राप्त होते है । उस समय यह पद्धति अपने प्रथम चरण या पायदान पर थी ।

उस समय तीव्र और कोमल स्वरों के भेद तथा ताल-मात्रा सहित स्वरलिपि नहीं होती थी; अर्थात् आज के आधुनिक समय के समान स्वरलिपि न होकर केवल स्वरों के नाम उनके प्रथम अक्षरों के साथ सरगम के रुप में दिए

जाते थे । उनसे केवल इतना ही मालूम होता था कि कौन-से गायन में कौन-से स्वर प्रयुक्त हुए हैं ।

तीव्र-कोमल स्वरों के चिहन न होने के कारण व ताल, मात्रा- मींड़ आदि के अभाव में उन स्वरलिपियों से संगीत विद्यार्थी लाभ उठाने में असमर्थ रहे । प्राचीन समय में स्वरलिपि पद्धती का विकास न होने के कुछ कारण निम्न प्रकार से माने जा सकते हैं ।

१. उस समय संगीत कला विशेषतया क्रियात्मक रूप में थी अर्थात गुरुमुख से सुनकर ही विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण किया करते थे ।

२. लेखन प्रणाली व सम्बन्धी सुविधाएँ उस समय आजकल जैसी नहीं थी ।

३. रागों को मौखिक रूप से याद रखा जाता था ।

४. संगीत कला गुरु से शिष्य और शिष्य से उसके शिष्यों को सिखाने या कंठस्थ कराने की प्रथा थी ।

५. प्राचीन कला के उस्ताद अपनी कला को अपने पुत्र अथवा विश्वसनीय शिष्यों को भी लिखकर नहीं बताते थे, बल्कि सीना ब सीना अर्थात सामने बैठकर ही सिखना पसंद करते थे ।

प्राचीन समय में स्वरलिपि पद्धती का विकास न होने में उपर्युक्त कारणों के अलावा और भी कुछ कारण होने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता है ।

संगीत चूँकि क्रियात्मक कला है, और कानों से सुने बिना इसे सिर्फ़ किताबों, मूर्तियों या चित्रों से ठीक-ठीक जानना या समझना मुश्किल है , इसलिए तमाम तरह के इतिहासों में संगीत के स्वरलिपि का इतिहास लिखना मुश्किल काम है । ध्वनि-मुद्रण की सुविधा तो हमें बींसवीं सदी में प्राप्त हुई; पर

इससे पहले भारतीय संगीत को प्रत्यक्ष सुनकर समझने का अन्य कोई साधन हमारे पास उपलब्ध नहीं था । उस समय स्वरलिपि इतनी सक्षम नहीं थी कि उसे देखकर राग-रचना को उसके प्राकृत रूप में गाया या बजाया जा सके ।

वास्तव में स्वरलिपि यह एक मानव शरीर के कंकाल समान है जब तक उस पर सुंदर स्वरावलियाँ, कण, मींड, व प्रमुख रूप से भाव रूपी मांस-पेशियाँ नहीं चढ़ती है, तब तक किसी भी राग-रचना को एक सुंदर शक्ल-सूरत प्राप्त नहीं हो पाती । किसी रचनाकार की रचना बार-बार कई वर्षों तक गाने के बाद उस रचना का स्वरूप बदलता जाता है । परंतु यदि उसे स्वरलिपि-बद्ध किया जाता है, तो कुछ हद तक उसका स्वरूप ज्यों का त्यों बना रहता है ।

जैसा कि हम जानते हैं कि मानव की उत्त्पत्ति काल से ही वह अपनी आवश्यकताओं का आविष्कारक रहा है । प्रारंभिक काल में मानव का अवतरण हुआ, तभी से स्वर-लय प्राकृतिक रूप में ही मानव में व्याप्त था; क्योंकि संम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही स्वर-लय बद्ध है । उसी प्रकार संम्पूर्ण सृष्टि नादात्मक भी है । "नाद" संज्ञा परम बीज सभी भूतों में अव्यक्त ध्वनि के रूप में विद्यमान है । मानव सभ्यता के प्रारंभिक अवस्था में खुशियाँ या उत्सवों के अवसर पर अपने हृदय की उमड़ती भावनाओं को गायन तथा नृत्य के माध्यम से प्रकट करता था । उस युग में नृत्य की तालात्मक संगति नृत्यकारों द्वारा स्वयं ही सम्पादित की जाती थी। वे काल का निर्धारण अपने पैरों को पटककर या दोनों हथेलियों से ताली देकर करते थे । कभी-कभी वे हाथों द्वारा सीना, बाजू या पेडू को ठोंककर भी लय की मर्यादा निर्धारित करते थे । कालान्तर में उसने शरीर के अंगों को ठोंक या पीट कर लय का प्रतिष्ठापन करने में पीड़ा अथवा कष्ट का अनुभव किया होगा । तब उसने प्राकृतिक रूप से उपलब्ध वस्तुओं में से कुछ का चयन

कर लय देने हेतु घन वाद्यों का सृजन किया । उसकी लयात्मक चेतना ने आंगिक चेष्टाओ एवं लय वाले वाद्यों का मानवीकरण भी किया ।

जब भाषा का आविष्कार नहीं हुआ था, तब मानव विभिन्न संकेतों तथा अस्फुट स्वरों के द्वारा अपने विचारों का आदान-प्रदान करता था । मुख द्वारा निष्पादित सीटी की ध्वनि भी इसी अस्फुट स्वरों में निहित थी । इसके पश्चात उसने कौतूहलवश वृक्ष के पत्तों तथा काष्ठ के दो टुकड़ों को बाँध करके उसे मुख में डालकर ध्वनि निकालने का प्रयत्न किया । वेदव्यासप्रणीत "हरिवंशपुराण" में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा पत्तों का बाजा बजाये जाने का उद्धरण मिलता है । युद्ध के समय में विविध सांकेतिक संकेतों या ध्वनियों के माध्यम से दुश्मनों की विविध गतिविधियों के संकेत दिये जाते थे । यह परंपरा विकसित होते-होते भाषा के रूप में प्रस्थापित हो चुकी थी । मानवीय सभ्यता के विकास में मनुष्यों ने काफी प्रगति कर ली थी । अब वे विविध भाषा, विद्या, को समझने में तथा समझाने में सामर्थ्य रखने लगे थे ।

संगीत की उत्पत्ति काल से १३वीं सदी तक संगीत में तथा उसकी विभिन्न कलाओं व विषयों में कई उतार-चढ़ाव आये, जिसे यहाँ स्थान देना आवश्यक नहीं है; या हमारे शोध-प्रबंध का विषय नहीं है । परंतु स्वरलिपि की उत्पत्ति का इतिहास जानने के लिये हमें १३वीं सदी से १९वीं सदी तक संगीत की गतिविधियों को जानना, समझना अनिवार्य है ।

१३वीं शताब्दी में तथा शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से मध्यकाल में भारतवर्ष पर मुसलमानों के बारंबार आक्रमण के कारण भारतीय नागरिकों व भारतीय संस्कृति के विकास में काफी खंड पड़े तथा जिसके कई दुष्प्रभाव भारतीय संगीत पर भी देखे जा सकते हैं । मुसलमानों के आक्रमण से मुक्ति पाने के लिए उत्तर भारतीय संगीतज्ञ दक्षिणांचल की ओर प्रस्थान करने लगे । मुस्लिम शासकों ने

विजय–प्रमाद तथा भारतीय संस्कृति को समूल नष्ट करने के उद्देश्य से यहाँ के कितने ही ग्रंथालयों तथा अमूल्य पुस्तकों को आग के हवाले कर दिया, जिससे अनेक बहुमूल्य संगीत-ग्रंथ नष्ट हो गए । तेरहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अर्थात खान साहेब मौलाबक्ष के पहले के काल मे संगीत कला ऐसे लोगों के हाथों में गयी कि पं. भरत, शारंगदेव आदि के ग्रंथ समझने अथवा ऐसे ग्रंथ निर्माण करने के वे पात्र ही न थे । इस कारण उसमें संगीत की प्रत्यक्ष क्रिया स्पष्ट नहीं हो पायी । शायद ऐसे ही लोगों ने यह प्रचार किया कि स्वरलेखन पद्धति से संगीत सीखना कदापि संम्भव नही है । इसका परिणाम यह हुआ कि संगीत केवल मर्यादित लोगों तक ही पहुँचा तथा स्वरलिपि पद्धति का प्रयोग कुछ काल के लिए समाप्त हो गया । इसके उपरान्त स्वरलिपि पद्धति के विचार की दृष्टि से जो काल आता है वह खान साहेब मौलाबक्ष का काल था ।

आज हम उन ग्रंथों का मात्र नामोल्लेख कर पाते हैं और उनमें प्रतिपादित विषयों के ज्ञान से बिलकुल वंचित रह गये हैं, जिसमें न केवल हमारे महान संगीतकारों की अमूल्य बंदिशें, रचानायें थीं; परंतु उसके साथ ही साथ हमने अपनी प्राचीन संस्कृति व परंपरा को जानने का व समझने का भी अवसर इस वजह से खो दिया ।

इन्हीं मुस्लिम शासकों के कारण यहाँ का प्रचलित वैदिक संगीत लुप्त हो गया । सामान्य लोगों में से अब शास्त्रीय संगीत उठकर शाही दरबारों तक सीमित हो गया था । इस प्रकार शास्त्रीय संगीत की प्राचीन परंपरा समाप्ति की ओर बढ़ रही थी । ऐसे वातावरण में शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर नामक ग्रंथ की रचना करके प्राचीन परंपरा और शास्त्रीय संगीत को लुप्त होने से बचाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसे उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के संगीतज्ञ निर्विवाद रूप से अपने-अपने संगीत का आधार ग्रंथ मानते हैं ।

इसके बाद ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, त्यों-त्यों शास्त्रीय संगीत की अवस्था कुछ हद तक सुधरती हुई दिखाई देने लगी । शारंगदेव के बाद सोमेश्वर, पार्श्वदेव, सुधाकर, १५वीं सदी में कल्लिनाथ ईत्यादी ने भी संगीत के प्रचार-प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । १६ वीं सदी में पुंडरीक विठ्ठल, रामामात्य , मानसिंह तोमर जैसे विद्वान संगीत के पुनरुत्थान में अपना योगदान दे रहे थे, वहीं उत्तरी भारत के भक्ति संगीत की धारा प्रवाहित हो रही थी, जिसका संचालन कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, एवं अष्टछाप के कवियों द्वारा हो रहा था । साथ ही साथ दक्षिण में भी पुरंदरदास, त्यागराज, मुत्थुस्वामी दिक्षीतार, आदि भी भारतीय संगीत परंपरा व संस्कृति का अस्तित्व बचाने में अपना योगदान दे रहे थे ।

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वाध में पं.सोमनाथ ने “राग विबोध” के पांचवे अध्याय में तंतु वाद्यों के लिये तेइस चिह्नों का प्रयोग किया है । ये सभी भक्त कवि साहित्य के कुशल सृजनकर्ता के साथ-साथ उत्तम कोटि के गायक भी थे । किन्तु दुर्भाग्यवश इन भक्त कवियों की रचनाओं के स्वरलिपि बद्ध रूप में न होने के कारण उन रचनाओं की केवल मौखिक परंपरा ही आज हमें प्राप्त होती है । यदि इनकी रचनाएँ लिखित स्वरूप में या स्वरलिपि बद्ध रूप में होतीं, तो आज हमारा संगीत और भी अधिक रूप में मूल्यवान हो सकता था ।

३.१. १९वीं शताब्दी में स्वरलिपि के उत्थान में विविध संगीत विद्वानों द्वारा किये गए प्रयत्न

मौलाबक्ष का आर्विभाव ऐसे युग में हुआ, जिसको सांगीतिक द्रष्टिकोण से अन्धकार युग कहा जा सकता है । कला और संस्कृति के क्षेत्रों में उस समय शिथिलता छायी हुई थी । संगीत और विलासप्रियता का घनिष्ट सम्बन्ध था । मुस्लिम शासन काल में ग्रंथकारों और कलाकारों के पारिवारिक सम्बन्ध के अभाव के साथ ही कला को प्राप्त मुस्लिम आश्रय के फलस्वरूप संगीत-विज्ञान और संगीत कला के मध्य एक बहुत बड़ी खाई उत्पन्न हो गयी थी ।

मुस्लीम शासन के उपरांत ही ब्रिटिश सत्ता का पदार्पण हुआ तथा ब्रिटिश राज्य काल में तो लोग भारतीय संगीत को पूर्णतः विस्मृत कर चुके थे । ब्रिटिशों का भारत आने का तात्पर्य ही अपना आर्थिक लाभ अर्जित करना था, अतः भारतीय कला संस्कृति के प्रति उनका कोई विशेष लगाव नहीं था । गहरे सांस्कृतिक असमानता की वजह से उनको भारतीय संगीत समझ में भी नहीं आता था । ब्रिटिशों से प्रभावित कई भारतीय शासकों की भी संगीत के प्रति उदासीनता से भारतीय संगीत के विकास एवं प्रचार प्रसार में अवरोध उत्पन्न हुए। ब्रिटिश काल में संगीतज्ञों को राज्याश्रय मिलना कम हो गया । इन विपरीत परिस्थितियों में भी संगीतज्ञों ने अपने घरों में भरपुर रियाज़ किया और इस विद्या को नामशेष होने से बचाने का प्रयत्न किया । अपने परिवारजनों एवं शिष्यों को संगीत शिक्षा प्रदान की और इस भारतीय संगीत की परंपरा को अविरत गतिशील रखने में वे सफल रहें । किन्तु ब्रिटिश शासन पूर्व जिस तरह कई राज्यों की रियासतों, दरबारों में कलाकारों की कला एवं विचारों का परस्पर आदान-प्रदान होता था। उसमें कमियाँ नजर आने लगीं । परिणाम स्वरुप सबकी अपनी-अपनी निज़ी शैली बनती गई, जो आगे जाकर विभिन्न संगीत घरानों के नाम से प्रचलित हुई ।

अंग्रेजों से प्रभावित सभ्य समाज ने संगीत को निम्न, अश्लील माना और उससे दूर रहने लगे । अतः इस समय में संगीत के क्रियात्मक पक्ष का विकास तो जारी रहा, किन्तु शास्त्र कि ओर किसिने अधिक ध्यान नहीं दिया । जिस तरह प्राचीन काल से लेकर मुगल शासकों के समय तक कई मुनियों, संगीत विद्वानों द्वारा भारतीय संगीत के विषय में कई शास्त्रों की रचना हुई एवं कई शोध विचार प्रस्थापित किये गये, वैसे प्रयत्नों का अभाव दिखने लगा । ब्रिटिश काल में भारतीय कलाकार केवल क्रियात्मक संगीत में ही अपनी विद्वता स्थापित करने में ही व्यस्त रहे । अतः ब्रिटिश काल में भारतीय संगीत के शास्त्र के प्रति उदासीनता दृष्टिगोचर होती है । किन्तु इन परिस्थितियों में भी जो कार्य किसी भारतीय द्वारा नहीं हुआ, वह कार्य कुछ ब्रिटिश संगीत जिज्ञासुओं द्वारा किया गया, जिसमें सबसे पहला प्रयत्न सन् १७८८ में "रॉयल एशियाटिक सोसायटी" द्वारा किया गया, 'Indian Antiquary' और 'Asiatick Researches' नामक पत्रिका के प्रकाशन के माध्यम से भारतीय पुरातनीक इतिहास एवं संगीत को जानने का प्रयत्न किया गया ।"[१]

उल्लेखनीय है कि बंगाल सुप्रिम कोर्ट के न्यायाधीश सर विलियम जॉन्स, जिन्होनें सन् १७८३ से १७९४ के बीच पूरे भारत का परिभ्रमण करके भारतीय संगीत एवं उसके इतिहास को जानने का प्रयत्न किया। उपरोक्त पत्रिकाओं के माध्यम से भारतीय संगीत के विषय में उनके कई शोध पत्र प्रकाशित किये गए थे। कई प्राचीन संस्कृत और पर्शियन ग्रंथों का अध्ययन करके सर विलियम जॉन्स" द्वारा १७८४ में "On the musicals modes of the hindus' नामक शोध पत्र प्रकाशित किया गया ।"[२]

उसी तरह बन्दा के नवाब के ब्रिटिश सेना के कप्तान एन.अगस्तस् विलार्ड ने सन् १७९३ में "A tratise on the music of india' नामक एक प्रभावशाली पुस्तक लिखी ।

मैसूर रियासत में अपनी सेवा दे चुके ब्रिटिश अफसर सि.आर.डे ने सन् १८९३ में 'The music and musical instruments of South India and the Deccan' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की ।"[३]

ब्रिटिश काल में भारतीय संगीत के बारे में जो कुछ लिखा गया उसे हम मुख्यतः दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं । पहला मानव जाति में प्रचलित संगीत और दूसरा प्राचीन शास्त्रों, स्थापत्यों, शिल्पों इत्यादि में भारतीय संगीत के इतिहास को जानने का प्रयत्न किया गया । इनके द्वारा मछुआरे, धोबिन, माँझी इत्यादि जैसे विविध प्रदेशों के मजदुरों द्वारा गाये जाने वाले लोकगीतों-धुनों से लेकर उस्तादी संगीत को जानने समझने का प्रयत्न किया गया और उसे लिखित शास्त्र के रुप में प्रकाशित किया गया । इस तरह ब्रिटिश काल में उपरोक्त संगीत प्रेमी पाश्चात्य विद्वानों ने पूरे भारत का परिभ्रमण करके भारतीय संगीत के इतिहास एवं उसके शास्त्रों का अध्ययन करके कई सांगीतिक पुस्तकें एवं शोध पत्र लिखे ।

किन्तु इन पाश्चात्य विद्वानों को भारतीय संगीत का कोई ज्ञान नहीं था । उन्होंने केवल जो कुछ देखा व सुना उसे लिखा । वे भारतीय संगीत की तुलना अपने संगीत से करने लगे और उन्होंने भारतीय संगीत को एक असभ्य, जंगली और अवैज्ञानिक बताते हुए उसकी काफी टीका की । भारतीय संगीत में महिला कलाकारों की कमी, घरानेदार कलाकारों के आपसी मतभेद, सुदृढ़ शास्त्रों की कमी एवं सबसे महत्त्वपूर्ण यानी, भारतीय संगीत में सुव्यवस्थित शिक्षा-व्यवस्था और स्वरलिपि का न होना इत्यादि कारणों से उन्होंने भारतीय संगीत को शास्त्रीय कला न मानते हुए उसे अविकसित और अवैज्ञानीक बताते हुवे उसका मजाक उडाया था ।"[४]

अतः अब वह समय आ चुका था कि अंग्रेजों द्वारा भारतीय संगीत के बारे में की गई निंदा को गंभीरता से सोचा जाए और उसे राष्ट्रीय-आंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक शास्त्रीय कला के रुप में पहचान प्राप्त करवाई जाए । इस दिशा में १९वीं सदी के आखिरी ५० वर्षो में देश के कई संगीत विद्वानों द्वारा सराहनीय प्रयत्न किये गए । भारतीय संगीत के लिए एक सुव्यवस्थित शिक्षा-व्यवस्था का निर्माण करना, महिलाओं को संगीत के प्रति आकर्षित करना और भारतीय संगीत के लिए एक स्वदेशी स्वरलिपि का निर्माण करना इत्यादि क्षेत्रों में १९वीं शताब्दी में कई सराहनीय कार्य हुए ।

विभिन्न शास्त्रकार, लेखकों से चर्चा व ग्रंथों के अध्ययन से यह मालूम होता है कि १९वीं शताब्दी स्वरलिपि के लिये नयी रोशनी लेकर आयी थी । जिसमें उस्ताद मौलाबक्ष के अलावा अन्य कुछ संगीतकारों, संगीतज्ञों, विचारकों ने "स्वरलिपि" के विषय को प्राध्यान्य देते हुए इस पर अनुसंधान करके अपनी अपनी स्वरलिपियों को जन्म दिया था । इन सभी स्वरलिपियों के निर्माता या रचनाकारों की अवश्य ही कुछ न कुछ आवश्यकता रही होगी, जिसके कारण ये सभी गुणीजन स्वरलिपि के निर्माण के कार्य में कार्यरत हो चुके थे । उनकी आवश्यकता पर नज़र डालें, तो उनकी आवश्यकताओं को निम्न चार प्रकार से विभाजित किया जा सकता है ।

१) संगीत व उसकी विविध शैलियों के पद रचनाएँ एवम् बंदिशों का संवर्धन करना :

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि १३वीं सदी में मुस्लिम शासकों ने विजय–प्रमाद तथा भारतीय संस्कृति को समूल नष्ट करने के उदेश्य से यहाँ के कितने ही ग्रंथालयों तथा अमूल्य पुस्तकों को आग के हवाले कर दिया, जिससे अनेक बहुमूल्य संगीत-ग्रंथ नष्ट हो गए । कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास,

मीराबाई, एवं अष्टछाप के कवियों साथ ही साथ दक्षिण में भी पुरंदरदास, त्यागराज, मुत्थुस्वामी दिक्षीतार, आदि भक्त कवियों की रचनाओं के स्वरलिपि बद्ध रूप में न होने के कारण उन रचनाओं की केवल मौखिक परंपरा ही आज हमें प्राप्त होती है। इस तरह ध्वनि मुद्रण और बहुमूल्य सांगीतिक रचनाओं का संवर्धन करने के लिए स्वरलिपि कि आवश्यकता महसूस हुई थी।

२) बैंड की रचनाओं को स्वरबद्ध करने हेतु :

१९वीं सदी में अधिकतर राजा-महाराजाओं के दरबारों में उनके मनोरंजनार्थ विविध सांगीतिक कार्यक्रम होते थे तथा विशेषकर जब दरबार में कोई अंग्रेज अतिथि आता तो व हमारा भारतीय संगीत नहीं समझ पाता, जिससे उसके मनोरंजनार्थ बैन्ड पर विशिष्ट धुनें बजाई जाती थीं। बैन्ड की धुनें समूह में एक समान बजाई जा सकें, इसके लिये स्वरलिपि की निर्मिति की जाने की संभावना है।

३) संगीत विद्यालयों में विद्यार्थीओं को पढ़ाने में सुविधा के लिये :

स्वरलिपि के जितने भी निर्माता या रचनाकार हुए, उनमें से अधिकतर गुणीजन संगीत विद्यालयों के संचालक या शिक्षक या गुरु रह चुके थे, जिन्होंने अपने संगीत विद्यालयों के शिक्षण कार्य में या अधिक संख्या में विद्यार्थीओं को पढ़ाने में होने वाली असुविधा को समझते हुए स्वरलिपि व्यवस्था को जन्म दिया होगा, ऐसी संभावना है।

४) अपनी रचना, बंदिशों के साथ अन्य सांगीतिक विचारों को प्रकाशित करने हेतु :

हमें प्राप्त विविध स्वरलिपि के निर्माणकर्ता स्वयं एक अच्छे बंदिशकार या रचनाकार रहे होंगे तथा अपनी रचनाओं के साथ अन्य सांगीतिक विचारों को प्रकाशित करने हेतु स्वरलिपि की रचना की होगी, ऐसा माना जा सकता है ।

आवश्यकता के बाद इन सभी स्वरलिपियों के रचनाकार के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह रहा होगा, कि स्वरलिपि किस आधार पर व कैसे बनाई जाये? क्योंकि १९वीं सदी में उनके सामने "स्टाफ नोटेशन" स्वरलिपि आदर्श थी; पर उससे हटकर एक नवीन व मौलिक स्वरलिपि बनाने का आवाहन इन सभी महानुभवों के सामने अवश्य रहा होगा । किन्तु भारत और पाश्चात्य दोनों ही देशों में स्वरलिपि पद्धति का विकास सर्वथा एक दूसरे से भिन्न दृष्टिगोचर होता है । भारतीय स्वरलिपि पद्धति का इतिहास प्राचीन नहीं है, क्योंकि यहाँ गुरु शिष्य परम्परा आधारित शिक्षा प्रणाली प्रचलित होने के कारण स्वरलिपि पद्धति का विकास पूर्णतः नहीं हो सका । परंतु इसके विपरीत पाश्चात्य संगीत में स्वरलिपि पद्धति अधिक प्रणालीबद्ध तथा व्यवस्थित, सरल और परिष्कृत है । इसका कारण है कि पाश्चात्य संगीत में मौखिक संगीत के स्थान पर लिखित संगीत पर अधिक जोर दिया जाता है । संगीत के गेय या वाद्य रुप को स्वर, तालबद्ध एवं शास्त्रीय परम्परागत रुप में सुरक्षित और गुरु शिष्य परम्परा को चिरस्थायी अक्षुण्ण बनाये रखने की एक सुबोध परम्परा है नोटेशन पद्धति। यह स्वरलिपि बद्ध गायन और वाद्य की परम्परा युरोपीय संगीत पद्धति में काफि उन्नत अवस्था में पाई जाती है । भारतीय संगीत में उपलब्ध इस स्वरलिपि को शायद युरोपीय नोटेशन सिस्टम से ही अधिक प्रेरणा मिली है । १९वीं सदी में कुछ गुणीजनों ने "स्टाफ नोटेशन" में ही थोडे बहुत फेर बदल करके अपनी स्वरलिपि

को जन्म दिया तो कुछ गुणीजनों ने भारतीय संस्कृति व संगीत की मौलिकता को बनाये रखते हुए विभिन्न चिह्नों या संकेतों से बद्ध अपनी स्वरलिपि को जन्म दिया ।

उपरोक्त कार्यों को, जो असंभव प्रतीत होते थे, उस्ताद मौलाबक्ष ने अपने हाथ में लिया । संगीत के प्रति अपार प्रेमवश, उन्होंने अपना पूर्ण जीवन भारतीय संगीत कला एवं संगीत विद्या के उत्थान के लिए अर्पित कर दिया । जन साधारण के लिए शास्त्रीय संगीत सुलभ कराना और उसे लोकप्रिय बनाना तथा संगीत की गायन-वादन शैलियों का सुधार और वैज्ञानिक नोटेशन पद्धति का प्रचलन करना उनका मुख्य ध्येय था । नोटेशन पद्धति से यद्यपि किसी कलाकार का निर्माण नहीं होता, बल्कि यह तो केवल उस सीमा तक सहायता करती है, जहा तक जनता में संगीत के प्रति रुचि में अभिवृद्धि होती है । मौलाबक्ष जी का यह लक्ष था कि संगीत की प्रतिष्ठा बढ़े और घर-घर में संगीत का बोलबाला हो । शिक्षित वर्ग के बच्चों के जीवन में संगीत घुलमिल जाए वे; यह भी चाहते थे की शिक्षा व्यवस्था में संगीत शामील हो और पाठयक्रमों में संगीत का समावेश हो। स्वरलिपि के पीछे एक उद्देश्य यह भी था कि भारतीय संगीत की सांस्कृतिक परंपरा के अनंत वैभव को सामान्य जन के समक्ष उपस्थित किया जाए । जिस काल में मौलाबक्ष ने जन्म लिया, उस समय न तो संगीत का कोई शास्त्रीय विवरण बतलाया जाता था, नहीं कोई व्यवस्थित स्वरलिपि द्वारा संगीत शिक्षा दी जाती थी । भारतीय संगीत को इस संकट से बाहर निकालने के लिए मौलाबक्ष ने भारत का भ्रमण किया, प्राचीन संगीत ग्रंथो का अध्ययन किया । संगीतज्ञों से भेंट की, तदुपरान्त उन्होंने अपना अनुसंधान कार्य प्रारंभ किया ।

जन साधारण को भी संगीत शिक्षा सुलभ हो इसीलिए उन्होंने भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त स्वरलिपि निर्माण करने के कार्य को प्राथमिक्ता प्रदान की। सन् १८७० में बड़ौदा में निवास के दरम्यान मौलाबक्ष ने अपने मित्र रामचंद्र

विश्वनाथ काळे की सहायता से "गायना-ब्धि-सेतु" नामक छह पन्नो की एक सांगीतिक पत्रिका का प्रकाशन किया । अप्रैल १८७० में प्रकाशित इस मासिक पत्रिका का मुल्य ३/-आना. रखा गया था । दो महीने बाद जून माह में इसके मूल्य में वृद्धि करके उसे ४/-आना. कर दिया गया । इस पत्रिका के नाम से ही विदित होता है कि "संगीत रुपी महासागर को पार करने वाला एक सेतु" ।"[५]

इस सांगीतिक पत्रिका के माध्यम से मौलाबक्ष ने खुद की आविष्कार की गई स्वरलिपि को जन साधारण में पहुँचाने का प्रयत्न किया । सेतु रुपी इस स्वरलिपि के माध्यम से मौलाबक्ष जन साधारण में संगीत शिक्षा के आदान-प्रदान को सुलभ एवं प्रचलित बनाना चाहते थे । उस समय की यह पहली सांगीतिक पत्रिका मानी जाती है, जिसका लेखन एवं प्रकाशन किसी एक भारतीय कलाकार द्वारा किया गया हो । दुर्भाग्यवश आर्थिक संकट के कारण अगस्त १८७० में मौलाबक्ष को इस सांगीतिक पत्रिका को स्थगित करना पड़ा, और भारतीय संगीत के लिए एक वैज्ञानिक स्वरलिपि को स्थापित करने का उनका यह सपना अधूरा ही रहा, जिसका उन्हें बहुत खेद रहा।" [६] दुर्भाग्यवश वर्तमान समय में इस पत्रिका की एक भी प्रति उपलब्ध नहीं है ।

मौलाबक्ष एक संगीतज्ञ, शिक्षक, शोधार्थी और एक लेखक के रुप में पूरे देश में अपनी एक विशेष पहचान प्राप्त कर चुके थे । मौलाबक्ष के अलावा इस काल में भारतीय संगीत के पुनःजागरण एवं एक स्वदेशी स्वरलिपि प्रस्थापित हो, इस दिशा में देश के विभिन्न प्रांतो में कई विद्वानों द्वारा सराहनीय प्रयत्न किये गये । जिसमें प्रमुख रुप से कलकत्ता, बड़ौदा, बम्बई, पुणे, मद्रास इत्यादि शहरों में संगीत के विद्वानों द्वारा उपरोक्त विषय को लेकर कई ऐतिहासिक कार्य हुए ।

कलकत्ता में टैगोर परिवार द्वारा भारतीय संगीत को राष्ट्रीय एवं आंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक शास्त्रीय कला के रुप में प्रस्थापित करने की दिशा में

सराहनीय प्रयत्न किये गये । राजा सर सौरिन्द्र मोहन टैगोर एवं उनके ज्येष्ठ भ्राता ज्योतीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा "हिन्दू मेलों" का आयोजन किया जाता था । देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से संगीत के विद्वानों को इन मेलों में आमंत्रित किया जाता था । सर सौरिन्द्र मोहन टैगोर ने सन् १८६७ में अखिल भारतिय संगीत संमेलन का आयोजन करके देश के हिन्दू-मुस्लीम कलाकारों को आंमत्रित किया गया था । लगातार आयोजित इस हिन्दू मेले में सन् १८७५ में मौलाबक्ष को भी आमंत्रित किया गया था । देश में इस प्रकार का यह पहला ऐतिहासिक प्रसंग था, जिसमें कई संगीत विद्वानों द्वारा भारतीय संगीत को पुनः प्रतिष्ठित एवं शास्त्र की दृष्टि से वैज्ञानिक बनाने की दिशा में चर्चा विचारणाओं द्वारा निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया जाता था ।"[७]

भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त स्वरलिपि प्रस्थापित होने की दिशा में बंगाल के संगीतज्ञों द्वारा विशेष प्रयत्न किये गये । कलकत्ता के सितार वादक एवं गायक क्रिष्णाधन बंदोपाध्याय (क्षेत्रमोहन गोस्वामी के शिष्य) द्वारा सन् १८६६ में जॉन करवेन की सोल्फा स्वरलिपि को आधार बनाकर "सितार शिक्षक" नामक पुस्तक प्रकाशित की गई । इस पुस्तक में गायन और वाद्यों की कई रचनाओं को स्वरलिपि बद्ध किया गया । सन् १८६७ में उन्होंने पुनः "बंगाइकताना" नामक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने कई बंगाली गीत प्रकारों को स्वरलिपि बद्ध किया था । बंदोपाध्याय को उनकी पुस्तक "गीतसूत्रधारा" (१८८५) के लिए विशेष पहचान प्राप्त हुई । इस पुस्तक में उन्होंने कई संस्कृत ग्रंथो का अध्ययन करके सैंकड़ों ध्रुपद और ख्यालो को बड़ी कुशलता के साथ लिपिबद्ध किया है, जिसमें उनके अनुभव एवं प्रभावशाली कार्य के दर्शन होते हैं।"[८]

वेस्टर्न नोटेशन के विकल्प के रुप में एक नई स्वरलिपि प्रस्थापित करने की दिशा में कलकत्ता के क्षेत्रमोहन गोस्वामी (टैगोर बंधु के गुरु) के प्रयत्न भी काफी सराहनीय रहे । सन् १८५८ में जोतिन्द्र मोहन टैगोर द्वारा कलकत्ता में

आयोजित एक निजी कार्यक्रम में क्षेत्र मोहन गोस्वामी द्वारा पाश्चात्य वाद्यवृंद की भाँति स्थानीय कलाकार मंडली की सहायता से एक वाद्यवृंद की रचना की गई थी । उल्लेखनीय है कि इस वाद्यवृंद में पहली बार भारतीय कलाकारों द्वारा स्वरलिपि के आधार पर प्रस्तुति की गई थी । इस बैन्ड में गोस्वामी ने स्थानीय धुनों और रागों के मिश्रण से कई रचनाओं को अपनी स्वरलिपि में निबद्ध किया था । इस तरह का यह पहला स्थानीय बैन्ड था, जिसे 'Belgatchia Amateur Band' के नाम से पहचाना जाता था । सन् १८६९ में गोस्वामी द्वारा अपनी आविष्कार की गई "दंडमात्रिक" स्वरलिपि में "संगीत सार" नामक पुस्तक भी प्रकाशित की गई थी ।[९]

बंदोपाध्याय और गोस्वामी द्वारा प्रकाशित यह पुस्तकें बंगाली भाषा में निबद्ध थीं । गोस्वामी द्वारा आविष्कार की गई स्वरलिपि को सर एस.एम.टैगोर का समर्थन प्राप्त हुआ, जब कि पाश्चात्य स्वर लिपि आधारित बंदोपाध्याय की स्वरलिपि को ब्रिटिश शैक्षणिक अधिकारियों का काफी समर्थन प्राप्त हुआ ।"[१०]

इसके उपरांत सन् १८६९ में द्विजेन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी आविष्कार की गई स्वरलिपि में "तत्वबोधिनी पत्रिका" का प्रकाशन किया, अपनी इस स्वरलिपि की छपाई में आनेवाली मुश्किलों की वजह से उन्होंने बंगाली अंकों की सहायता से "संख्यामात्रिक" नामक नई स्वरलिपि का निर्माण किया और उसे सन् १८७२ में "बंगादर्शन पत्रिका" के माध्यम से प्रकाशित किया ।

१९वीं शताब्दी में स्वरलिपि यह विषय सर्वाधिक चर्चा एवं विवाद में रहा। गोस्वामी एवं एस.एम.टैगोर का मानना था कि पाश्चात्य स्वरलिपि भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त स्वरलिपि नहीं है । प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करने के बाद गोस्वामी चाहते थे कि भारतीय संगीत के लिए प्राचीन ग्रंथों में बताए गये संकेतों एवं सरगम आधारित एक स्वदेशी स्वरलिपि का आविष्कार हो । चार्ल्स बर्ने द्वारा

संकलित विश्व कोश में पायथागोरस और ग्रीस के इतिहास को पढ़ने के बाद गोस्वामी ने यह दावा किया था कि युरोप को अपनी स्वरलिपि का आविष्कार करना अभिमान किया जाना बिल्कुल गलत है, क्योंकि पायथागोरस ही था, जिसने भारत की यात्रा के बाद युरोप में जाकर स्वरलिपि का प्रचार किया ।"[११]

सर एस. एम. टैगोर द्वारा भी गोस्वामी की स्वरलिपि को मान्यता दी गई और ३ अगस्त १८७१ में स्थापित बंगाल म्यूजिक स्कूल में गोस्वामी की स्वरलिपि द्वारा शिक्षा कार्य को समर्थन प्रदान किया गया और इसी स्वरलिपि में सन् १८७२ में मृदंग वादन तथा सितार वादन और सन् १८७४ में हार्मोनियम वादन की शिक्षा हेतु कई पाठय पुस्तकें भी प्रकाशित की गई थी । सन् १८७३ में टैगोर द्वारा प्रकाशित पुस्तक "हिन्दू म्यूजिक" में कई देशी विदेशी संगितज्ञों द्वारा भारतीय संगीत के इतिहास, शास्त्र, स्वरलिपि जैसे विविध विषयों पर लेख प्रकाशित किये गए । इस पुस्तक में मौलाबक्ष का उर्दू भाषा में एक निवेदन दिया गया है, जिसमें उन्होने गोस्वामी की स्वरलिपि को अपना समर्थन प्रदान किया है, और जिसको बंगाल स्कूल के शिक्षक कालीप्रसाद बंदोपाध्याय द्वारा देवनागरी लिपि में अनुवाद करके छापा गया है । जिस पर मौलाबक्ष के हस्ताक्षर हैं और उन्हें प्रोफेसर मौलाबक्ष ऑफ बॉम्बे के नाम से संबोधित किया गया है।"[१२]

सन् १८७५ में सर एस.एम.टैगोर द्वारा भी वेल्स के प्रिन्स के सम्मान में वैदिक मंत्रों को अंग्रेजी में अनुवाद करके पाश्चात्य स्वरलिपि में निबद्ध किया गया था । साथ-साथ उन्होंने इंग्लिश राष्ट्रीय गीत 'Rule Britannia' को राग हमीर कल्याण में स्वरलिपि बद्ध किया था ।"[१३]

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल के सर एस.एम.टैगोर ने संगीत के कई उत्तम ग्रंथों का सृजन किया । इनका लिखा 'The Universal History of Music' नामक ग्रंथ अत्याधिक प्रचलित हुआ । इन्होंने भारतीय संगीत कला के

लिए जो कुछ किया । आगामी कई वर्षो तक उसकी समता नहीं हो सकती है । इनके ग्रंथो की संख्या अत्याधिक होने के कारण उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं है।

"कंठ-कौमुदी", "संगीत सार", "यन्त्रक्षेत्र दीपिका" आदि उनके प्रमुख प्रकाशन अपने गुणों का स्वयं प्रदर्शन करते हैं ।

सन् १८८३ में कलकत्ता के प्रमोद कुमार टैगोर ने 'First Thoughts on Indian music' नामक पुस्तक में भारतीय धुनों को पाश्चात्य संगीत पद्धति में रचना करने का प्रयास किया । सन् १८८९ में प्रियानाथ रॉय ने 'Indian music in European notation' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें इंग्लिश कविताओं और बंगाली गीतों को युरोपियन नोटेशन में लिपिबद्ध किया है ।"[१४]

सन् १८८५ में श्रीमती प्रतिभादेवी सुन्दरी ने "कोषिमात्रिक" स्वरलिपि का निर्माण किया। उल्लेखनीय है कि सन् १८७० में बंकिमचंद्र चटर्जी द्वारा रचित "वंदे मातरम्" राष्ट्रगीत को "कोषिमात्रिक" स्वरलिपि में निबद्ध करके गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा सन् १८८५ में "बालक पत्रिका" में प्रकाशित किया गया था ।

सन् १८८८ में ज्योतीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा "भारती ओ बालक पत्रिका" में अपने लेख "गानेर स्वरलिपि" के माध्यम से "आकार मात्रिक" स्वरलिपि का आविष्कार किया, और उसे सन् १८९७ में "स्वरलिपि गीतिमाला" नामक पुस्तक तथा "भारत संगीत समाज" और "डवारकिन कम्पनी" द्वारा संयुक्त रुप से प्रकाशित "वीणावादिनी" और "संगीत प्रकाशिका" नामक मासिक पत्रिकाओं के माध्यम से खूब प्रचलित बनाया।"[१५]

उल्लेखनिय है कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ज्योतीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा आविष्कार कि गई “आकार मात्रिक” स्वरलिपि का स्वीकार किया और “रवीन्द्र संगीत” में “आकार मात्रिक” स्वरलिपि के प्रयोग से रागों की रचनाएँ की । इस तरह भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त स्वरलिपि बनाने के लिए बंगाल के उपर्युक्त स्वरलिपिकारों का विशेष योगदान रहा है । जामनगर के आदित्यराम व्यास ने भी सन् १८८० के समय में खुद की स्वरलिपि का आविष्कार कीया था ।

ठीक उसी तरह बम्बई में SLSS के शिक्षक गोवर्धन विनायक छत्रे व उनके भाई नीलकंठ विनायक छत्रे ने मिलकर अपनी स्वरलिपि को जन्म दिया, और इस संस्था में महिलाओं को संगीत शिक्षा देने हेतु सन् १८६४ में “गीतिलिपि” नामक पुस्तक का लेखन किया जिसमें स्टाफ नोटेशन की मदद से मराठी गीतों, अभंगों इत्यादि को रागों में स्वरलिपि बद्ध करके सिखाया जाता था ।”[१६]

सन् १८५० में भाऊशास्त्री अष्टपुत्रे द्वारा “गायन प्रकाश” और १८५२ में “श्रृंगार मंजरी” नामक पाठ्यक्रम आधारित पुस्तकें प्रकाशित की । इन पुस्तकों में भारतीय संगीत के राग रागिनियों के इतिहास के साथ-साथ अष्टनायिका के गीतों को संकलित कर उसे ठुमरी अंग से सिखाया जाता था । “[१७]

शुरुआत में भारतीय संगीत में स्वरलिपि के उपयोग का विरोध करने वाले “पूना गायन समाज” ने भी धीरे-धीरे स्वरलिपि के महत्व को समझते हुए सन् १८७८ में “स्वरशास्त्र” नामक पुस्तक प्रकाशित की । इस पुस्तक के अंतर्गत लेखक ने दावा किया है कि, भारतीय संगीत प्राचीन काल से ही सर्वश्रेष्ठ और आधुनिक कला रहा है । भारतीय संगीत ने केवल वैज्ञानिक स्वरलिपि का निर्माण किया था; पर साथ साथ वैज्ञानिक दृष्टि खुद की जटिल स्वरसंगतियों का भी निर्माण किया। लेखक के अनुसार स्वरलिपि को ढूँढने के लिए हमें कहीं बाहर

जाने की आवश्यक्ता नहीं है, क्योकि १३वीं शताब्दी में लिखे संस्कृत ग्रंथ "राग विबोध" में इसका पहले से ही विवरण दिया गया है ।"[१८]

संगीत मीमांशक मराठी संगीत पत्रिका के सम्पादक पुरुषोत्तम गणेश घारपुरे द्वारा लिखित "सतारीचे पहिले पुस्तक" नामक पुस्तक को "पूना गायन समाज" द्वारा सन् १८८३ में प्रकाशित किया गया । इस पुस्तक में उन्होंने प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में स्वरों को पहचानने के लिए प्रयुक्त होने वाले चिह्नों और संकेतों का प्रयोग किया है और साथ-साथ खुद के बनाये गए संकेतों द्वारा अपनी स्वरलिपि को अधिक से अधिक सरल बनाने के लिए प्रयत्न किया है ।"[१९]

"पूना गायन समाज" के अन्य शिक्षक बालकोबा नाटेकर और नारायण दासो बालहट्टी ने भी मराठी भाषी विविध पाठ्य पुस्तकों में वर्णित कविताओं को संकलित करके उसे "बाल संगीत बोध" नामक पुस्तक के नाम से प्रकाशित किया है, जिसे विशेषतः "पूना गायन समाज" की विभिन्न शाखाओं में सिखाया जाता था ।"[२०] "पूना गायन समाज" के मद्रास स्थित शाखाओं में भी कर्णाटकी संगीत के पाठ्यक्रम आधारित ग्रंथों को प्रकाशित किया गया था । मद्रास शाखा के शिक्षकों श्री सेशागिरी शास्त्री द्वारा 'English treatise on hindu music' और श्री श्रृंगाराचारलु द्वारा प्राथमिक संगीत शिक्षा हेतु तेलगू भाषा में अभ्यासलक्षी पुस्तकों का प्रकाशन किया गया था । इन सभी पुस्तकों को स्वरलिपि माध्यम से छात्रों को शिक्षा दी जाती थी ।"[२१]

दक्षिण में भी कुछ एक संगीत विद्वानों द्वारा स्वरलिपि के निर्माण की दिशा में सराहनीय कार्य किये गये थे । दक्षिण के महान रचयिता श्री मुत्थुस्वामी दिक्षितर (१७७५ -१८३५) के वंशज एवं उत्तराधिकारी विद्वान सुब्बारामा दिक्षितर द्वारा सन् १८५९ में प्रारंभीक संगीत शिक्षा लेने वाले विद्यार्थीयों के लिए "संगीता संप्रदाया प्रदर्शिनी" नामक पुस्तक के माध्यम से सरगम आधारित स्वरलिपि का

आविष्कार किया था । इस पुस्तक में मुत्थुस्वामी दिक्षितर की कई प्राचीन रचनाओं को स्वरलिपि बद्ध करके उसे लुप्त होने से सुरक्षित रखा । सुब्बारामा दिक्षितर के कार्यों से ही प्रेरणा लेकर ए. एम. चिन्नास्वामी मुदालियार ने भी सन् १८९३ में स्टाफ नोटेशन को आधार बनाकर विविध दक्षिणी कलाकारों की ८०० रचनाओं को स्वरलिपि बद्ध कर उसे प्रकाशित किया गया था ।

सन् १८९२ के बाद दक्षिण के कलाकारों ने अपने संगीत के लिए स्टाफ नोटेशन का सर्वथा स्वीकार कर लिया था । टी. एम. व्यंकटेशा शास्त्री, ने सन् १८९२ में "संगीता स्वयं बोधीनी" नामक पुस्तक में स्टाफ नोटेशन का प्रयोग करके इंग्लिश में संगीत रचनाओं को लिपि बद्ध किया था ।"[२२]

इन सभी स्वरलिपि के निर्माताओं ने निम्न तत्वों के आधार पर अपनी-अपनी स्वरलिपि का निर्माण किया होगा या यह कह सकते हैं कि यही वे तत्व हैं, जिनको केन्द्र स्थान में रखकर ही सभी स्वरलिपि के निर्माताओं अपनी स्वरलिपि का निर्माण किया होगा-

स्वरलिपि निर्माण के तत्व :

१) स्वरों के विभिन्न स्वरूपों को अंकित करना ।

२) स्वरों के बीच की दूरी को अंकित करना

३) तीनों सप्तक के स्वरों को अंकित करना

४) ताल विभाजन व उसके संदर्भ में अलंकारों को अंकित करना

५) अन्य सांगीतिक अलंकारों को अंकित करना ।

जैसा कि हमने ऊपर देखा कि १९वीं सदी में कई शास्त्रकारों ने, संगीतज्ञों ने अपनी-अपनी महेनत, परिश्रम व अध्ययन से विभिन्न स्वर संकेतों से युक्त स्वरलिपियों की रचना की थी । इन विभिन्न स्वरलिपियों का अभ्यास करने पर

यह विदित होता है की उस समय स्वरलिपिकारों में दो अलग-अलग विचारधाराएँ अस्तित्त्व में थी ।

एक समूह था जिन्होंने “राग-विबोध” और “संगीत रत्नाकर” जैसे भारतीय संस्कृत ग्रंथो को आधार मानकर “वर्णमाला” या “सरगम” आधारित स्वरलिपि को जन्म दिया था । इस श्रेणी के सर्मथकों में क्षेत्र मोहन गोस्वामी, पी.जी.घारपुरे, ज्योतिन्द्रनाथ टैगोर इत्यादि के नाम प्रमुख है । दुसरी ओर इस विचारधारा से विपरित क्रिष्णाधन बंदोपाध्याय, चिन्नास्वामी मुदालियार, टी. एम. व्यंकटेशा शास्त्री जैसे विद्वान थे जिन्होंनें “स्टाफ-नोटेशन” से प्रेरित होकर उसमें थोड़े बहुत बदलाव करके अपनी स्वरलिपि को जन्म दिया था ।

उल्लेखनिय है कि उस्ताद मौलाबक्षने उपर्युक्त सभी विद्वानों से हटकर अपनी स्वरलिपि में सरगम, कर्णाटकी ताल पद्धति और स्टाफ-नोटेशन के संमिश्रण से भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त स्वरलिपि का सफलता पूर्वक निर्माण किया ।

उस्ताद मौलाबक्ष को छोड़कर अन्य स्वरलिपियों की अपनी-अपनी कुछ न कुछ मुश्किलें या त्रुटियाँ अवश्य ही रहे थे, जिनके कारण वे अपने समय में लोकप्रिय न होकर पूर्ण-रुप से प्रस्थापित न हो सकीं । इन स्वरलिपियों के लोकप्रिय न होने के कारणों को हम संक्षेप में समझें, तो सबसे पहला कारण स्वरलिपियों की “भाषा” थी, जिसके कारण ये स्वरलिपियाँ केवल उस क्षेत्र, विस्तार या राज्यों तक ही सिमित रह गई; जहाँ उनका निर्माण हुआ था ।

दूसरा कारण छपाई में आनेवाली मुश्किलें थीं क्योंकि उस समय पूरे हिन्दुस्तान में बहुत कम मात्रा में छपाई कारखाने थे, जहाँ सांगीतिक पुस्तकें

छापी जाती थीं और जो थे तो छपाई का खर्च बहुत अधिक होने से कई स्वरलिपियों के रचनाकारों ने उसे ज्यों का त्यों अधूरा छोड़ दिया ।

तीसरा कारण यातायात की मुश्किलें थीं, क्योंकि उस समय में यातायात के लिये इतने वाहन उपलब्ध नहीं थे । एक शहर या राज्य से दूसरे शहर या राज्य में जाने में काफी दिन या महीनों लग जाते थे । जिस कारण स्वलिपियों का प्रचार रचनाकारों के कार्यक्षेत्र तक ही सीमित होकर रह गया था ।

चौथा कारण यह था कि कुछ गुणीजनों ने स्वरलिपियाँ तो बनाई परंतु वह केवल नाटकों के गीतो के लिये, बैन्ड की रचनाएँ बजाने के लिये, या प्रादेशिक लोकगीतों के संवर्धन के लिये ही प्रयुक्त होती थीं न कि शास्त्रीय रागों-बंदिशों के संवर्धन के लिए ।

भारत के प्रमुख सभी इतिहासकारों एवं संगीतज्ञों द्वारा मौलाबक्ष को भारतीय संगीत में स्वरलिपि का आविष्कारक माना गया है । किन्तु भारतीय संगीत जगत में यह विवाद हमेशा रहा है कि स्वरलिपि का आविष्कार सर्वप्रथम किसने किया? स्वरलिपि का आविष्कार सर्वप्रथम किसने किया यह जानने से बेहतर विकल्प यह है कि इन विद्वानों में से किस की स्वरलिपि अधिक वैज्ञानिक थी?

दूसरी बात यह की केवल प्रकाशन वर्ष के माध्यम से हम यह तय नहीं कर सकते कि सर्वप्रथम स्वरलिपि का आविष्कार किसने किया । सन् १८६० में मैसूर दरबार में नियुक्ति के दौरान ही मौलाबक्ष को दक्षिणी संगीत सीखने के लिए जो कटु अनुभव हुए थे, तभी उन्होंने सोच लिया था कि जनसाधारण के लिए संगीत शिक्षा संस्थान का निर्माण करना और उसमें क्रियात्मक और शास्त्रात्मक दोनों प्रकार के संगीत का ज्ञान देना है । इसी हेतु उन्होंने भारतीय संगीत शिक्षा के लिए उपयुक्त स्वरलिपि का निर्माण करना बेहद जरुरी समझा था ।

मौलाबक्ष पर यह आरोप भी लगाया कि उनकी स्वरलिपि बंगाल के क्षेत्रमोहन गोस्वामी की स्वरलिपि से प्रेरित है । परंतु गहन अध्ययन द्वारा यह विदित होता है कि सन् १८७५ में कलकत्ता जाने से पहले ही मौलाबक्ष अपनी स्वरलिपि को प्रस्थापित करने के लिए प्रयत्न करते रहे थे और इसी उद्देश्य से उन्होंने केवल अपने बलबूते पर "गायना-ब्धि-सेतु, (जिसका उल्लेख अध्याय के प्रारंभ किया है) का प्रकाशन किया था । किन्तु आर्थिक संकट के कारण वे इस पत्रिका को जारी न रख सके। दूसरी ओर बंगाल, जहाँ स्वरलिपि के आविष्कार में कई संगीत विद्वानों के प्रयत्न सामने आते हैं । परंतु कलकत्ता में श्रीमंत टैगोर परिवार की कृपादृष्टि और संगीत के प्रति प्रेम के कारण वहाँ के कलाकारों को मौलाबक्ष की तरह आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ा था । फलस्वरूप उनकी स्वरलिपि आधारित पुस्तकें जल्दी प्रकाशित हुईं ।

महाराष्ट्र में भी स्वयं-सेवित संस्थाओं को इस प्रकार की मुसीबतों का सामना नहीं करना पड़ा था । अतः वहाँ पर भी स्वरलिपि को संगीत-शिक्षा में प्रस्थापित करने में अधिक देर न लगी ।

किन्तु मौलाबक्ष पूरे देश में कई दरबारों, रियासतों में आमंत्रित किये गए । वहाँ उन्हें केवल सांगीतिक मनोरंजन एवं दरबारी शोभा बढाने के लिए ही नियुक्त किया जाता था । मौलाबक्ष के विचारों को उनका समर्थन न मिल सका । इसीलिए मौलाबक्ष उच्च वेतन को भी ठुकरा कर एक जगह से दूसरी जगह परिभ्रमण करते रहे; और अपने आधुनिक एवं वैज्ञानिक विचारों को प्रस्थापित, करने की दिशा में प्रयत्नशील रहे । कलकत्ता जाने से पहले उन्होंने सन् १८७४ में बड़ौदा नरेश मल्हारराव गायकवाड़ के दरबार में नियुक्त ब्रिटिश अधिकारियों से पाश्चात्य संगीतशास्त्र एवं उसकी स्वरलिपि का भी ज्ञान अर्जित किया था । इन्हीं उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि मौलाबक्ष सन् १८६० में अपने दक्षिणी यात्रा और बाद में सन् १८७४ तक बड़ौदा के प्रवास में कर्णाटकी और पाश्चात्य शास्त्रों

का ज्ञान अर्जित कर चुके थे । मौलाबक्ष की स्वरलिपि को देखने से यह बात अधिक समझ में आ सकती है । उनकी स्वरलिपि में कर्णाटकी ताल पद्धति और पाश्चात्य् स्वरलिपि के मिश्रण एवं खुद के कुछ नये चिह्नों, संकेतों द्वारा एक नई स्वरलिपि का आविष्कार खुद मौलाबक्ष की ही मौलिकता दर्शाती है। यह मात्र एक संयोग ही हो सकता है कि कलकत्ता से सन् १८८१ में बड़ौदा लौटने के पश्चात उन्हें नये महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय का संपूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ और संगीत शिक्षा के लिए गायनशाला की निर्मिति और उसमें खुद की आविष्कार की गई स्वरलिपि में पाठ्यक्रम आधारित ग्रंथो का निर्माण करने का मौलाबक्ष का सपना पूरा हुआ ।

१ फरवरी, १८८६ में मौलाबक्ष द्वारा स्थापित इस गायनशाला में, १८८८ से १८९६ तक कुल १९ पुस्तकें उनकी स्वरलिपि में प्रकाशित की गईं । उनके मार्गदर्शन में उनके पुत्रों, नाती एवं उनके शिष्यों द्वारा भी कई अभ्यासलक्षी पुस्तकों का निर्माण हुआ । ये सभी पुस्तकें मौलाबक्ष द्वारा आविष्कार की गई स्वरलिपि में लिपिबद्ध थीं । गुजराती, मराठी, संस्कृत, इंग्लिश हिंदी इत्यादि भाषाओं में प्रकाशित ये पुस्तकें देश भर में चर्चा का विषय रहीं । गायनशाला की स्थापना से लेकर करीब ३०-४० वर्षों तक गायनशाला में मौलाबक्ष की आविष्कार की गई स्वरलिपि के माध्यम से शिक्षा जाती थी । मौलाबक्ष से प्रेरणा लेकर गायनशाला के अभ्यासक्रम को पूर्ण करने के बाद उनके कई शिष्यों ने भी बम्बई, अमरावती, यवतमाळ इत्यादि जगहों पर संगीत स्कूल खोले और मौलाबक्ष की स्वरलिपि के माध्यम से संगीत सिखाना शुरु किया । मौलाबक्ष के समकालीन वरिष्ठ कलाकार फैज महम्मद ने भी मौलाबक्ष के पथ पर "संक्षिप्त संगीत सूर्यप्रकाश" तथा "यशवंत संगीत सुर्यप्रकाश" नामक पुस्तकों के माध्यम से खुद की स्वरलिपि का आविष्कार किया था । इतने लंबे समय तक एक स्वरलिपि का टिके रहना और इसी स्वरलिपि के माध्यम से सफल शिक्षा का अविरत कार्यान्वित

रहना ही अपने आप में यह सिद्ध करता है कि मौलाबक्ष ही सर्वप्रथम ऐसे कलाकार थे, जिन्होनें ने भारतीय संगीत शिक्षा व्यवस्था के अनुरुप वैज्ञानिक स्वरलिपि का आविष्कार किया । हालाँकि उनके परिवार का सन् १९१०-११ के बाद विदेश की ओर प्रयाण के बाद मौलाबक्ष की स्वरलिपि प्रचार-प्रसार कम होता गया। मौलाबक्ष के कई शिष्यों द्वारा उनकी स्वरलिपि में परिवर्तन करके अपने नाम पर स्वरलिपि स्थापित करने का भी प्रयत्न हुआ, जिससे मौलाबक्ष की मूल स्वरलिपि को बहुत हानि पहुँची और शनैः शनैः उनकी यह स्वरलिपि कब लुप्त हो गई और एक इतिहास बन गई, यह पता न चला । भारतीय संगीत में स्वरलिपि के आविष्कार एवं लंबे समय तक उसका भारतीय संगीत शिक्षा व्यवस्था में प्रयोग होना सही अर्थों में मौलाबक्ष को महानता प्रदान करता है । हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पद्धति की "स्वरलिपि" को राष्ट्रीय स्तर पर अंतिम रूप देने का महान कार्य उस्ताद मौलाबक्ष जी ने ही किया, ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी ।

आगे हम उस्ताद मौलाबक्ष द्वारा निर्मित व हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पद्धति की राष्ट्रीय स्तर की प्रथम "स्वरलिपि" का अध्ययन करेंगे ।

३.२ उस्ताद मौलाबक्ष द्वारा निर्मित स्वरलिपि का संक्षिप्त अध्ययन

१. कोमल-तीव्र स्वर के चिह्न

१) "स" इस चिह्न वाले स्वर को पूर्ण या शुद्ध समझना है। जिस बंदिश या कविता के स्वर के ऊपर कोई भी चिह्न न किया गया हो, तो ऐसे सभी स्वरों को शुद्ध या पूर्ण समझना है ।

२) "रे∨ " इस चिह्न वाले स्वर को कोमल समाझना है।

३) " म⁄ " इस चिह्न वाले स्वर को तीव्र समझना है।

२. सप्तक के चिन्ह

१.) ″ प् ″ जिस स्वर के नीचे बायीं ओर आड़ी लकीर या हल्ंत चिह्न लगाया गया हो, उसे मंद्र सप्तक का स्वर समझना चाहिये।

२.) ″स″ जिस स्वर पर कोई भी निशान या चिह्न न हो उसे मध्य सप्तक का स्वर समझना चाहिये।

३.) ″मं″ जिस स्वर के ऊपर ऐसी आड़ी लकीर का निशान या चिह्न हो, उसे तार सप्तक का स्वर समझना चाहिये।

३. स्वरों को कितनी देर तक लंबाना है, उनके चिह्न

१) ″ सा ″ यह काकपद का चिह्न है। जिस स्वर को यह ″ + ″ चिह्न लगा हो उसे आठ लधु मात्रा तक लंबाना है अर्थात् इस चिह्न की मात्रा आठ होती है ।

२) ″ सा 8 ″ इस चिह्न को द्विगुरु समझना है। जिस स्वर को यह ″8″ चिह्न लगा हो उसे चार लधु मात्रा तक लंबाना है; अर्थात् इस चिह्न की मात्रा चार होती है ।

३) ″ सा s ″ इस चिह्न को गुरु समझना है । जिस स्वर को यह ″S″ चिह्न लगा हो, उसे दो लघु मात्रा तक लंबाना है; अर्थात् इस चिह्न की मात्रा दो होती है।

४) “सा” जिस स्वर को कुछ भी चिह्न न हो उसे लघु समझना है। उसे एक लघु मात्रा तक लंबाना है अर्थात् इस की मात्रा एक होती है ।

५) " स् " इस चिह्न को द्रुत समझना है। जिस स्वर को यह " ٦ " चिह्न लगा हो उसे आधी लघु मात्रा तक लंबाना है अर्थात् इस चिह्न की मात्रा आधी होती है।

६) " सा॒ " इस चिह्न को अनुद्रुत समझना है । जिस स्वर को यह " ٦॒ " चिह्न लगा हो उसे पाव लघु मात्रा तक लंबाना है अर्थात् इस चिह्न की मात्रा पाव होती है ।

७) " सा$_{80}$ " इसको डेढ़ द्विगुरु समझना चाहिए । जिस अक्षर के आगे ऐसा छोटा-सा शून्य हो, उसकी बायीं ओर जो चिह्न हो, उसके आधे भाग की मात्रा इस छोटे-से शून्य की होती है, ऐसा समझना चाहिए । डेढ़ अक्षर मानना चाहिए। जैसे " सा$_{80}$ " को द्विगुरु लगा है और उसके आगे शून्य है, तो द्विगुरु की मात्रा ४; और चार का आधा भाग दो होता है, तो शून्य की दो मात्रा समझना है, ऐसे मिलाकर कुल मात्रा छ हुई । ऐसे ही अन्य चिह्नों के विषय में समझना है ।

८) एक " सा$_{+}$ " काकपद के दो " सा$_{8}$ " द्विगुरु होते हैं ।

९) एक " सा$_{8}$ " द्विगुरु के दो " सा$_{S}$ " गुरु होते है।

१०) एक " सा$_{S}$ " गुरु के दो " सा " लघु होते है ।

११) एक " सा " लघु के दो " स् " द्रुत होते हैं ।

१२) एक " स् " द्रुत के दो " सा॒ " अनुद्रुत होते हैं ।

४. तालों को मात्रा स्वरुप में लिखने के चिह्न

१). ″ ◡ ″ विराम की मात्रा ताल का स्वरुप लिखने में विराम की मात्रा एक होती है ।

२). ″ ० ″ द्रुत - ताल का स्वरुप लिखने में द्रुत की मात्रा दो होती है ।

३). ″।″ लघु - ताल का स्वरुप लिखने में लघु की मात्रा चार होती है ।

४). ″ S ″ गुरु - ताल का स्वरुप लिखने में गुरु की मात्रा आठ होती है ।

५). ″ ◡̥ ″ द्रुत विराम की मात्रा ३ होती है । नीचे द्रुत है उसकी मात्रा २ और ऊपर विराम है, उसकी मात्रा १; ऐसे कुल मिलाकर ३ मात्रा होती है।

६). ″ ◡। ″ लघु विराम की मात्रा ५ होती है । नीचे लघु है उसकी मात्रा ४ और ऊपर विराम है, उसकी मात्रा १; ऐसे कुल मिलाकर ५ मात्रा होती है ।

७). ″ ◡०। ″ लघुद्रुत विराम की मात्रा ७ होती है । नीचे लघु है, उसकी मात्रा ४ और ऊपर द्रुत है, उसकी मात्रा २ तथा उसके उपर अनुद्रुत (विराम) है, उसकी १ मात्रा; ऐसे कुल मिलाकर ७ मात्रा होती है । इसमें पहली मात्रा पर ताल देकर अन्य ६ मात्रा गिननी है।

५. ताल देने के चिह्न

१) ″ — ″ यह ताल देने का चिह्न है। जिस स्वर के नीचे यह चिह्न दिया गया हो, वहाँ केवल ताल देना है ।

२) ″ •̄ ″ यह सम का चिह्न है। जिस स्वर के नीचे यह चिह्न दिया गया हो, वहाँ ताल देना है, ओर यह सम का चिह्न है, वहाँ जोर से ताल देना है ।

३) "7 " यह खाली का चिह्न है । यह चिह्न जहाँ हो, वहाँ पर ताली न देकर जमीन की ओर हाथ करना है। उदा. सरीग | समग | सगप

इस में पहले "सा" पर सम देना है। दुसरे "सा" पर ताली देना है व तिसरे "सा" पर खाली देनी है यह अर्थ होता है।

६.काल

काल अर्थात् समय। गाने-बजाने में कौन-सा स्वर लंबा या छोटा करना है, और कौन-से स्थान पर कितना विराम लेना है, उसकी जो मात्रा है, उसे काल कहते हैं। उस काल का प्रयोग, लय, ताल, मार्ग इत्यादि में तथा स्वरों के उच्चारण में किया जाता है। उपर्युक्त काल का अभिप्राय लय है । जिस प्रकार हम लय के तीन प्रकार मानते हैं, उन्हीं तीन प्रकारों को यहाँ काळ या काल के नाम से संबोधित किया गया है । प्रो.मौलाबक्ष के समय में लय के विभिन्न प्रकारों को काळ या काल के नाम से संबोधित किये जाने की संभावना है । इसके मुख्य तीन प्रकार हैं-

१) शुद्ध विलंब काल

२) मध्यकाल

३) द्रुतकाल

किसी भी ताल की जितनी भी मात्रा हो उससे दुगुनी करने पर "विलंबकाल" होता है और समान मात्रा रखने से "मध्यकाल" होता है तथा आधी मात्रा करने से "द्रुतकाळ " होता है ।

अब जैसा कि हम जानते हैं कि तेताला ताल में १६ मात्राएँ हैं । यह मात्रा बहुत जल्द भी नहीं तथा धीमी भी नहीं; लेकिन मध्य लय या काल में गिनने से मध्यकाळ होता है; और उसी पद्धति से जो एक-एक मात्रा में हम

आठ-आठ लघु मात्राएँ गिनें तो विलंबकाल होता है और एक-एक मात्रा में हम दो-दो लघु मात्रा गिनें, तो द्रुतकाल होता है । यदि किसी पाठ या अभ्यास के उपर विलंबकाल लिखा गया है और पाठ में चार-चार लघु मात्रा हर एक ताल में दिये गये हो तो उसके काल के मुताबिक एक-एक ताल में आठ-आठ लघु मात्रा गाने या बजाने से वह विलंबकाळ होता है और दो-दो लघु मात्रा गाने या बजाने से वह द्रुतकाल होता है । यह जानकारी केवल तेताला ताल के विषय में दी गई है । लेकिन इसी प्रकार से अन्य सभी तालों की गिनती करनी है । मात्रा गिनने का आधार ताल की मात्राओं पर आधारित होता है । इस प्रकार से यदी कीसी बंदिश का "काल" या "काळ" न बताई गई हो तो उसकी स्वरलिपि देखकर हम बता सकते है की यह "विलंबकाल" है "मध्यकाल" है या "द्रुतकाळ " है । इन मुख्य तीन भागों के दो उपविभाग बताए गए हैं, जो इस प्रकार है

१) मध्यविलंब

२) मध्यद्रुत

जाति के अनुसार काल में भी कौन से काल में कितना समय या अवधि लगेगी, यह बताया गया है । वह निम्न प्रकार से है, जिसे हम रेखाचित्र के माध्यम से समझेंगे।

काल	**लगने वाला समय या अवधि (सेकंड में)**
शुद्धविलंब काल	१५ सेकंड
मध्यविलंब काल	१० सेकंड
मध्यकाल	०५ सेकंड
द्रुतकाल	२.५ सेकंड

७.यति

"यति" शब्द की व्याख्या देते हुए प्रो. मौलाबक्ष ने लिखा है कि "यति" शब्द "यम्" धातु पर से उत्पन्न हुआ है। "यम्" का अर्थ काबू में रखना। स्वर को काबू में रखकर खुद की इच्छा के अनुसार आकर्षण करना, उसे "यति" कहा है । यति अर्थात् एक मात्रा में कितने स्वर लेने हैं व कौन से लय में लेना है, इसका प्रयोजन दिखाई देता है । लय की चाल को "यति" कहते हैं । उन्होंने यति के पाँच भेद निम्न प्रकार से बताए है–

१.समयति :– समयति के अंदर एक स्वर पर ताल आता है व दूसरे किसी स्वर का उच्चारण हो, तब तक उसे खींचना या लंबाना उसे "समयति" कहते हैं। समयति में केवल दो स्वरों की मिलावट होती है । उसमें प्रथम स्वर का पूर्ण उच्चारण और उसके साथ अन्य दूसरे स्वर का प्रथम स्वर जितना ही उच्चारण जोडकर करना, उसे "समयति" कहते है। अर्थात् आरंभ से अंत तक समान लय का होना समयति कहलाता है । उदा. सा री = सा आ

२.विषमयति :– दो स्वरों के बीच में तालस्तंभ (खड़ी लकीर) रखा हुआ होता है, वहाँ प्रथम स्वर का उच्चारण करना और दूसरे स्वर पर ताल देना "विषमयति" कहलाता है। उदा. – सा | री सा | आ

३.गोपुच्छयति :– तीन–चार या उससे अधिक स्वर मिलकर "गोपुच्छयति" की रचना होती है। उदा. सा रे ग , सारीगम, सारीगमपधनीसां

४.प्लुतयति :– जिन स्वरों पर अथवा वर्ण पर प्लुतयति का चिह्न रखा हो, उन स्वरों में से या वर्णों में से आदि स्वर का या वर्णोच्चार कर के उसके बाद का उच्चारण अ,आ पर खटका या झोल देना है । यह यति अधिकतर निचली और मध्यम सप्तक के स्वरों में होती है । उदा.

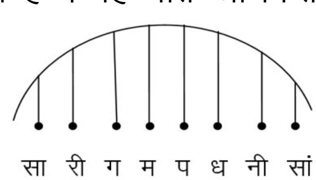

५.मृदुंगयति :- मृदुंगयति तीन, चार या अधिक स्वर मिलकर होती है। मृदुंगयति में प्रथम स्वर का उच्चारण साधारण करके उत्तरोउत्तर आवाज को फैलाते जाना है। वह जितने स्वरों तक मृदुंगयति का प्रथम भाग हो, वहाँ उसे अनुक्रम से फैला कर और उत्तरार्ध को प्रथमानुसार साधारण उच्चार करना है। उदा. सगारस सआअ

ग्रह व जाति के समान यति में भी विकास, उन्नति या उत्क्रांति देखी जा सकती है, क्योंकि संगीत रत्नाकर में केवल समा, स्त्रोतोगता व गोपुच्छयति का विवरण प्राप्त होता है । परंतु समय के साथ-साथ आज हमें पाँच यति प्राप्त होती है । साथ ही साथ मृदुंगयति का एक और प्रकार जिसे अर्ध मृदुंगयति के रूप में जाना जाता है, वह भी यहाँ प्राप्त होता है । जिसका चिह्न इस प्रकार से है । ×

८.जाति

यह गायन की प्राचीन विद्या जातिगायन न होकर ताल की विभिन्न जातियों से संबंधित जातियाँ है । इसमें जाति की व्याख्या देते हुए बताया गया है की ताल जिस अंतर पर दिया जाता है, उसे पहचानने के लिये जो वर्ग बनाये गये हैं, उसे जाति कहते हैं । ताल की पाँच जातियाँ बताई गई हैं, जो निम्न प्रकार से हैं

क्रम	जाति	मात्रा	चिन्ह
१	चतुश्र जाति	४ मात्रा	" । "
२	तिश्र जाति	३ मात्रा	" ◡° "
३	मिश्र जाति	७ मात्रा	" ◡°। "
४	खंड जाति	५ मात्रा	" ◡। "
५	संकीर्ण जाति	९ मात्रा	" ◡ऽ "

मौलाबक्षजी ने इन पाँच जातियों के साथ-साथ संगीतानुभव" पुस्तक में "लघुद्रुतांग" व पुस्तक "बाल संगीत माला" में "दिव्य संकीर्ण" नामक दो उप जातियाँ बताई हैं, दोनो की मात्रा छः मानी जाती है व दोनो का चिह्न " ॰| " है।

ताल जाति के विषय में उत्तरोत्तर विकास या प्रगति दिखाई देती है; क्योंकि"संगीत रत्नाकर" में केवल दो ताल जाति बताई गई है, जो इस प्रकार है - १.त्र्यश्र २. चतुश्र । सोमेश्वर ने अपने ग्रंथ में (१) चतुश्र (२) त्र्यश्र (३) मिश्र व (४) खंड इस प्रकार चार जातियाँ बताई हैं। उसी प्रकार पाणिनि ने अपने ग्रंथ में १) चतुश्र २) त्र्यश्र ३) संकीर्ण व ४) खंड इस प्रकार चार जातियाँ बताई हैं।

प्रो.मौलाबक्ष ने पाँच ताल जातियों के वर्णन के पश्च्यात उस में लगने वाले समय या अवधि को समझाने का प्रयास किया है, जो इस प्रकार है । चतुश्र जाति की मात्रा गिनने में जितना समय या अवधि लगती है; उससे पौने भाग का समय तिश्र जाति की मात्रा गिनने, पौने दो भाग का समय मिश्र जाति की मात्रा गिनने में, सवा भाग का समय खंड जाति की मात्रा गिनने में, और सवा दो भाग का समय संकीर्ण जाति की मात्रा गिनने में लगता है । इसे हम सेकंड लगने वाली अवधि को निम्न प्रकार से रेखाचित्र से समझ सकते हैं ।

जातियाँ	**मात्रा गिनने में लगने वाला समय या अवधि (सेकंड में)**
१) चतुश्र जाति	**४ सेकंड**
२) त्र्यश्र जाति	**३ सेकंड** चतुश्र जाति से पौने भाग का समय
३) मिश्र जाति	**७ सेकंड** चतुश्र जाति से पौने दो भाग का समय
४) खंड जाति	**५ सेकंड** चतुश्र जाति से सवा भाग का समय
५) संकीर्ण जाति	**९ सेकंड** चतुश्र जाति से सवा दो भाग का समय

९. अंग के विषय में

अ – प्रत्येक विभाग को अंग कहते हैं ।

ब – काल–समय या लय के जितने अंग हैं, उन पर से उस काल की या लय की मात्रा गिनी जाती है ।

क– मात्रा गिनने का आधार लय तथा मार्ग पर आधारित है, जिससे जैसी लय या मार्ग होगी, उस प्रकार मात्रा गिनी जाती है ।

१०. स्वरलिपि में उपयोगी अन्य चिह्न

गायन तथा वाद्यों में जो–जो क्रियाएँ की जाती हैं, वह समझाने के लिए उन चिह्नों को इस पुस्तक में वर्णित किया गया है, जो निम्न प्रकार से हैं

१) स री ग| ग री स| जो सा रे ग और ग रे सा के बीच में और अंत में खड़ी लकीर है, उसे स्तंभ कहते हैं।

२) " " गायन तथा वाद्यों में यह मुख्य चिह्न है और यह हरेक पंक्ति के पहले आता है। जिससे स्वर का आरंभ मध्य सप्तक से करना यह समझाना है।

३) " '|' " इस चिह्न से (खरज) से सप्तक का आरंभ करना है।

४) " स री ग म " इस चिह्न के बाँयी ओर जितने भी अक्षर या स्वर हों, उसे दो बार गाना है । उदा. स री ग म के पीछे यह चिह्न है, तो स री ग म, स री ग म एसा दो बार गाना या बजाना है ।

५) " स री ग म री ग म प " यह चिह्न जहाँ हो, तो शुरु से यह चिह्न जहाँ तक हो वहाँ तक दो बार गाना बजाना है। परंतु सूचना के अंतर्गत

इस चिह्न के विषय मे कहा गया है कि आगे के भाग को भी दो बार गाना है । अर्थात् स री ग म ,स री ग म तथा री ग म प ,री ग म प ऐसा दो बार गाना या बजाना है ।

६) " स री ग म रीगमप " इस चिह्न के दायीं ओर के स्वरों को दो बार गाना या बजाना है । परंतु स री ग म को केवल एक ही बार गाना-बजाना है । जैसे सारीगम के बाद रीगमप,रीगमप स्वरों को दो बार गाना या बजाना है।

७) " " यह चिह्न जहाँ हो वहाँ चीज या बंदिश पूर्ण होती है यह समझाना है । यह बंदिश पूर्ण होने का चिह्न है । जिस प्रकार हम किसी वाक्य के पूर्ण होने पर खड़ी लकीर लगाते है वैसे ही बंदिश पूर्ण होने के बाद यह चिह्न लगाने से ज्ञात होता है कि यहाँ बंदिश पूर्ण हो चुकी है परंतु बंदिश पूर्ण होने के बाद बंदिश का कुछ भाग फिरसे गाना-बजाना होता है इसके लिये पूर्णता के इस चिन्ह के पास (+) एसा चिन्ह हो और स्वरलिपि में एसा ही चिह्न पहले जहाँ हो वहाँ से दोबारा शुरू करके " ⊙ " ऐसा चिह्न हो वहाँ पर बंदिश समाप्त करना है ।

८) " ˩ " ऐसी फुल्ली का चिह्न जिस स्वर पर हो और बाद में फिर ऐसा ही चिह्न दूसरे स्वर पर आये, तो पहली फुल्ली से दूसरी फुल्ली तक के स्वर को दो बार गाना या बजाना है ।

उदा. स री ग म |* री ग म प | प म ग री | म ग री स |*

इसमें सारेगम से लेकर मगरीस तक गाना है फिर रेगमप से मगरीस तक दो बार इन स्वरों को गाना-बजाना है।

९) " [१] [२] " ये चिह्न अधिकतर साथ-साथ में ही आते हैं । इस चिह्न के पास जितने भी स्वर आते हैं, तो पहली बार १ के अंदर समाविष्ट स्वरों को गाना है । फिर दूसरी बार इस चिह्न के अंदर के स्वरों को बिलकुल छोड़ देना है अर्थात् गाना नहीं है फीर २ इस चिह्न वाले स्वरों से आगे गाना शुरू करना है । जैसे -

१ २

सरीगम | रीगमप | गमपध | पमगरी ꞉ मपधनी | पधनीसं | सांनीधप | नीधपम | गरीस |

इसमें "सरीगम" से "पमगरी" तक पहली बार गाना है । फिर दूसरी बार "सरीगम" से "गमपध" तक के स्वरों को गाकर "मपधनी" से गरीस तक गाना है और "पमगरी" यह भाग छोड़ देना है और उसी ताल में "मपधनी" यह स्वर गाकर आगे के स्वरों को गाना है ।

११. काल के मुख्य सोलह (१६) अंग

इसके बाद काल के मुख्य सोलह अंग निम्न प्रकार से बताए गए हैं।

(१) अनुद्रुत काल के अंग को विराम कहते हैं और उसका चिह्न (◡) यह है । ताल में जहाँ यह चिह्न आता है, वहाँ एक कहकर एक टकोर या आघात बजाना है।

(२) द्रुतकाल के अंग को धृतांग कहते हैं और उसका चिह्न (○) है। ताल में जिस स्थान पर यह आकृति या चिह्न आता हैं, वहाँ एक-दो गिन कर एक कहते ही आघात बजाना और दो बोलते समय कुछ नहीं बजाना है।

(३) द्रुत तथा अनाद्रुत मीलकर बने काल को द्रुतविराम कहा जाता है जिसका चिह्न यह (ŏ) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आता है, वहाँ एक कहते आघात लगाना है बाद में दो-तीन पर खाली रखना है।

(४) लघु काल के अंग को लघु अंग कहते हैं । उसकी आकृति या चिह्न (।) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आता है, वहाँ एक कहते ही आघात लगाकर दो-तीन-चार पर खाली रखना है।

(५) लघु तथा अनाद्रुत मिलकर हुए काल को लघुविराम अंग कहते हैं, जिसकी आकृती है (।̆) ताल में जिस स्थान पर यह चिन्ह आता है, वहाँ एक पर आघात लगाकर दो-तीन-चार-पाँच पर खाली मानना है।

(६) लघु तथा द्रुत मिलकर हुए काल को लघुद्रुत अंग कहते हैं, जिसका चिह्न इस प्रकार (।̊) हैं । ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आता है, वहाँ एक कहते ही आघात लगाकर दो-तीन-चार-पाँच पर खाली मानना है।

(७) लघु तथा अनाद्रुत मिलकर हुए काल को लघुद्रुत विराम अंग कहते हैं, जिसका चिह्न (।̊̆) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आता हैं, वहाँ एक कहते ही आघात लगाकर दो-तीन-चार-पाँच पर खाली माननी है।

(८) गुरुकाल के अंग को गुरु अंग कहते हैं, जिसका चिह्न (ऽ) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आता है वहाँ एक कहते ही आघात लगाकर दो से आठ तक खाली रखना है।

(९) गुरु तथा अनाद्रुत काल को मिलाकर जो अंग बनता है, उसे गुरु विराम अंग कहते हैं, जिसका चिह्न (ऽ̆) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न या आकृति आए, वहाँ एक पर आघात लगाकर दो से नौ तक खाली गिनना है।

(१०) गुरु तथा द्रुतकाल मिलकर जो अंग बनता है, उसे गुरुद्रुत अंग कहते हैं, तथा जिसका चिह्न (ऽ̊) है । ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आए वहाँ एक पर आघात लगाकर दो से दस तक खाली मानना है।

(११) गुरुद्रुत तथा अनाद्रुत काल को मिलकर जो अंग बनता है, उसे विराम अंग कहते हैं, जिसकी आकृती या चिह्न (ऽ̊̆) है। ताल में जिस स्थान पर यह

चिह्न आए, वहाँ एक पर आघात लगाकर दो से ग्यारह तक खाली मानना है।

(१२) गुरु तथा लघु काल मिलकर जो अंग बनता है, उसे प्लुत अंग कहते हैं, जिसका चिह्न (8) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आए वहाँ एक पर आघात लगाकर दो से बारह तक खाली मानना है।

(१३) प्लुत तथा अनाद्रुत काल को मिलकर जो अंग बनता हैं, उसे प्लुत विराम अंग कहते हैं, जिसका चिह्न (8̆) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आए, वहाँ एक पर आघात लगाकर दो से तेरह तक खाली मानना है।

(१४) प्लुत तथा द्रुत काल को मिलकर जो अंग बनता हैं, उसे प्लुत द्रुत अंग कहते हैं, जिसका चिह्न (ऽ̊|) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आए, वहाँ एक पर आघात लगाकर दो से चौदाह तक खाली मानना हैं । सूचना के अंतर्गत प्लुत द्रुत के चिह्न के विषय में कहा गया है कि प्लुत द्रुत का चिह्न जो ऊपर बताया गया है, वह चिह्न अशुद्ध है । उसका शुद्ध चिह्न (8̊)है।

(१५) प्लुतद्रुत तथा अनाद्रुत काल को मिलकर जो अंग बनता है, उसे प्लुत द्रुत विराम अंग कहते हैं। जिसकी आकृती या चिह्न यह (8̆̊) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आए, वहाँ एक पर आघात लगाकर दो से पंद्रह तक खाली मानना है।

(१६) काकपद काल के अंग को काकपद अंग कहते हैं । उसका चिह्न (+) है। ताल में जिस स्थान पर यह चिह्न आए, वहाँ एक पर आघात लगाकर दो से सोलह तक खाली मानना है।

<u>सूचना</u>

(१) स्वर चिह्न की मात्राओं से ताल चिन्ह की मात्राएँ चौगुनी अधिक होती हैं।

(२) ताल चिह्न को लिखते समय सबसे अधिक मात्रा का चिह्न पहले लिखकर उस पर उससे उतरती मात्रा का चिह्न लिखना है । जैसे चतुश्र जाति के

तेताला की १६ मात्रा है। उसमें चार चार मात्रा के तीन ताली और एक खाली इस प्रकार चार भाग होते हैं । हरेक भाग चार चार मात्रा का होता है। १६ / || || = १६ / ४ ४ ४ ४

उस्ताद मौलाबक्ष की स्वरलिपि देखने से यह मालूम होता है कि उन्होंने अपनी स्वरलिपि में छोटी से छोटी बातों को ध्यान में रखकर इसे बनाया है। उनकी स्वरलिपि पद्धति गणित के आधार पर अधिक अवलंबित दिखाई देती है। उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में गायन-वादन के हरेक अलंकार व क्रिया को बारीकी से समझते हुए उन अलंकारों व क्रियाओं के अनुरूप सांकेतिक चिह्न बनाए हैं, ऐसा लगता है ।

उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि के पहले स्टाफ नोटेशन व कर्नाटकीय स्वरलिपि ये दो स्वरलिपियाँ पूर्ण रूप से प्रस्थापित हो चुकी थीं तथा प्रादेशिक स्तर पर भी कई गुणीजनों ने इस दिशा में अपना-अपना योगदान दिया था, जिसके कारण उस्ताद मौलाबक्ष के समक्ष इन स्वरलिपियों से हटकर स्वरलिपि के क्षेत्र में अपनी मौलिकता दिखाने का एक बहुत बड़ा आवाहन था, जिसमें उस्ताद मौलाबक्ष ने बहुत ही परिश्रम, विचार व पूर्वक सफलता हाँसिल की थी ।

उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में मौलिकता तो अवश्य ही दिखाई है; परंतु कुछ स्थानों पर या गायन-वादन के कुछ अलंकारों व क्रिया के चिह्न इंगित करने में उन्होंने स्टाफ नोटेशन व कर्नाटकीय स्वरलिपि इन दो स्वरलिपियों का थोड़ी मात्रा में अनुकरण किया हुआ मालूम होता है । जैसे उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी ताल पद्धति की नींव पूर्णरुप से कर्णाटकीय संगीत पद्धति से ग्रहण की हुई लगती है, जिसमें लघु, गुरु, द्रुत इत्यादि का प्रयोग, जाति आधारित ताल की मात्रा व खंड, स्वर को लंबाने की पद्धति, इसके अलावा गायन-वादन समाप्ति का चिह्न, बंदिश के आगे ताल की जानकारी देना इत्यादि प्रमुख है । इससे यह कहा जा सकता है कि उस्ताद मौलाबक्ष की स्वरलिपि में कर्णाटकीय संगीत पद्धति का या उसकी स्वरलिपि का प्रभाव अधिक था ।

कर्णाटकीय संगीत पद्धति के अलावा उस्ताद मौलाबक्ष की स्वरलिपि में स्टाफ नोटेशन का भी अंश या प्रभाव देखा जा सकता है । जिस प्रकार स्टाफ नोटेशन में बंदिश के आगे उसके प्रारंभ करने के सप्तक की जानकारी नियुक्त चिह्न के माध्यम से दी जाती हैं, उसी विचार को उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में प्रयोग करते हुए हरएक बंदिश के आगे सप्तक की जानकारी देने के लिये विभिन्न चिह्नों का प्रयोग किया है ।

इसके अलावा उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में कोमल स्वर के लिये जिस चिह्न का प्रयोग किया है वह शायद क्षेत्र मोहन गोस्वामी से प्रभावित लगता है; क्योंकि क्षेत्रमोहन गोस्वामी जी अपने कोमल स्वर को बताने के लिये उसके उपर छोटा-सा त्रिकोण का चिह्न बनाते थे, जिसे निम्न चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं

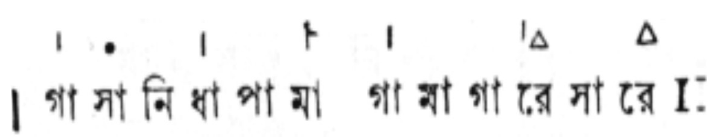

यही चिह्न उस्ताद मौलाबक्ष ने अपने कोमल स्वर के लिये भी प्रयुक्त किया हुआ दिखाई देता है । फर्क केवल इतना है कि क्षेत्रमोहन गोस्वामी जी अपने कोमल स्वर को बताने के लिये उसके ऊपर छोटा सा त्रिकोण का चिह्न बनाते थे । परंतु उस्ताद मौलाबक्ष स्वर के उपर त्रिकोण का चिह्न न लगाकर ठीक स्वर के बगल में त्रिकोण का चिह्न लगाते थे तथा क्षेत्रमोहन गोस्वामी के त्रिकोण का नोंक ऊपर की ओर है; जबकि उस्ताद मौलाबक्ष के त्रिकोण का नोंक नीचे की ओर है । जैसे "रे∇ "

इसके अलावा अन्य चिह्नों में उस्ताद मौलाबक्ष की मौलिकता दिखाई देती है । जैसे बंदिश की किसी पंक्ति की पुनरावृत्ति के लिये बनाये गये विभिन्न चिह्न, विभिन्न यतियाँ, स्वर के तीव्र स्वरूप के चिह्न, सप्तक के चिह्न, आवाज छोटी-बड़ी करने के चिह्न, स्वर पर खटका या झोल देने का चिह्न, विभिन्न लय या काल के लिये चिह्न, ताल की पाँच जातियों के अलावा और दो जातियाँ, उसी प्रकार लय की या काल के तीन भेद के अलावा अन्य दो भेद भी उस्ताद मौलाबक्ष जी ने बताये हैं ।

उस्ताद मौलाबक्ष की स्वरलिपि में प्रमुख रूप से दो समस्याएँ अवश्य आती हैं । जिनमें सर्वप्रथम बंदिश के स्थाई व अंतरा इन दो भागों को समझने में असुविधा तथा स्वर के मंद्र व आधि मात्रा के किये प्रयुक्त चिह्न जो तकरीबन एक समान है, जिससे समझने में भी कुछ हद तक समस्या आती है । इसका मतलब यह नहीं है कि उस्ताद मौलाबक्ष की स्वरलिपि में त्रुटियाँ हैं या यह स्वरलिपि क्लिष्ट है । परंतु जब तक इसका ध्यान पूर्वक अभ्यास नहीं किया जायेगा, तब तक यह स्वरलिपि किसी के लिये भी क्लिष्ट मालूम होगी । परंतु ज्यों-ज्यों हम इसका गहराई से व ध्यान पूर्वक अध्ययन करेंगे, वैसे-वैसे यह स्वरलिपि भी सरल व सहज होती जाती है ।

जैसा कि पहले भी बताया गया है कि उस्ताद मौलाबक्ष की स्वरलिपि में छोटी से छोटी बातों का ध्यान रखते हुए स्वरलिपि का निर्माण किया गया है, जिसमें से कुछ चिह्नों का भरपूर प्रयोग किया गया । परंतु कुछ चिह्न या नियम अधिक प्रयुक्त नहीं किये गये । उस्ताद मौलाबक्ष द्वारा निर्मित स्वरलिपि के इस छोटे-छोटे स्वरलिपि के नियमों की, उस्ताद मौलाबक्ष को उतनी आवश्यकता शायद महसूस नहीं हुई होगी, जितना उसे बनाते वक्त लगी होगी; क्योंकि उनके द्वारा निर्मित स्वरलिपि नियमों में से कुछ चिह्न या नियम ऐसे हैं, जिनका प्रयोग स्वयं उस्ताद मौलाबक्ष ने बहुत कम मात्रा में किया हुआ दिखाई देता है ।जैसे कि काल के विषय में उन्होंने तीन काल के अलावा अन्य दो काल मध्यविलंब व मध्यद्रुत जो बताये है, उनका प्रयोग अत्यल्प दिखाई देता है; वैसे ही ताल की पाँच जातियों के अलावा जो अन्य दो ताल जातियाँ लघुद्रुतांग व दिव्य संकीर्ण बताई गई है, उनका प्रयोग अत्यल्प मालूम देता है ।

उसी प्रकार लघु गुरु, द्रुत को छोडकर अन्य अंग अर्थात् काकपद, अनाद्रुत, द्विगुरु का प्रयोग कम किया गया है। यति के अंतर्गत जो पाँच यतियाँ समयति, विषमयति, गोपूच्छयति, प्लुतयति, मृदुंगयति बताई गई हैं, उनमें से मृदुंगयति को छोड़कर अन्य चार यतियों का प्रयोग मृदुंगयति की तुलना में अधिक किया गया है ।साथ ही साथ छठी यति जो अर्ध मृदुंगयति बताई गई है, उसका केवल उल्लेख मात्र प्रयोग किया गया हैं ।

उस्ताद मौलाबक्ष जी ने बंदिश के प्रारंभ में उसे कौन-से सप्तक से आरंभ करना है ।उसके लिये दो चिह्न मध्य सप्तक व मंद्र सप्तक के बताये, जिसमें से मंद्र सप्तक के लिये बताए गए चिह्न का प्रयोग बंदिश में अत्यल्प है ।परंतु मध्य सप्तक के चिह्न का भरपूर प्रयोग किया गया है या ऐसा कह सकते हैं कि तकरीबन हरेक बंदिश में इसका प्रयोग किया गया है ।

बंदिश में पंक्तियों की पुनरावृत्ति के लिये फुल्लि व मींड के समान आकृति में १ लिखा हो, ऐसे चिह्नों का प्रयोग बहुत कम दिखाई देता है। उसी प्रकार गाना पूर्ण होने के बाद फिर से गाना गाकर समाप्त करने के लिये "◡̇ " यदि यह चिह्न बताया गया है उसका प्रयोग भी बहुत कम दिखाई देता है।

इस प्रकार उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में कई स्वर-ताल चिह्न प्रयुक्त किये है इसका मतलब यह नहीं कि उसका प्रयोग हरेक बंदिश में किया जाय परंतु हरेक चिह्न का प्रयोग उसकी आवश्यकता के अनुसार ही उस्ताद मौलाबक्ष जी ने किया हुआ दिखाई देता है।

आगे हम उस्ताद मौलाबक्ष के ताल व उससे संबंधित विषय को समझने का प्रयास करेंगे।

ताल विश्लेषण

स्वरलिपि के इस उपप्रकरण में हम उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में जो ताल व उसके जो विभिन्न चिह्न प्रयुक्त किये गये हैं, उन्हे भातखंडेजी की स्वरलिपि में समझने का प्रयास करेंगे । उस्ताद मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में कुल बाराह ताल प्रयोग किये हैं । यह बाराह तालों की मात्रा, जाति, खंड, ताली, खाली, एक-दूसरे से भिन्न हैं । इनमें से कुछ तालों की जाति बदलने से ताल के विभिन्न रूप उत्पन्न होते हैं, जिससे ये बाराह तालों के स्थान पर हमें कुल ईक्किस ताल प्राप्त होते हैं ।

शोध प्रबंध में प्रयुक्त जिन सात पुस्तकों का प्रयोग किया है, उनमें मुख्य रूप से जो हमें कुल ईक्किस ताल प्राप्त होते हैं, वह निम्न प्रकार से हैं ।

क्रम	ताल का नाम	जाति	मात्रा	ताली	खाली	खंड
१	एकताला	खंड	५	१	नहीं है।	१
२	एकताला	मिश्र	७	१	नहीं है।	१
३	एकताला	चतुश्र	४	१	नहीं है।	१
४	एकताला	तिश्र	३	१	नहीं है।	१
५	चौताला	चतुश्र	१२	१,५,९,११	३,७	३
६	तेताला	तिश्र	१२	१,४,१०	७	४
७	तेताला	चतुश्र	१६	१,५,१३	९	४
८	रूपक	तिश्र	५	१,३	२	१
९	रूपक	चतुश्र,	६	१,३	५	१
१०	तेवरा	तिश्र-त्रिपुट	७	१,४,६	५,७	१
११	तेवरा	तिश्र-त्रिपुट	७	१,४,६	५,७	२
१२	झपताल	तिश्र	१०	१ ,३,८	६	२
१३	दादरा	तिश्र	६	१	नहीं है।	१
१४	जलद दादरा	लधुद्रुतांग / दिव्य संकिर्ण	६	१	४	१
१५	दिपचंदी	--	१४	१,४,११	८	४
१६	सूलफाक	तिश्र	८	१,४	६	३
१७	सूलफाक	चतुश्र	१०	१,५,७	६	३
१८	आडा चौताल	चतुश्र	१४	१,३,७,११	२	४
१९	आडा चौताल	तिश्र	११	१,३,६,९	२	४
२०	झंपा	चतुश्र	७	१,२,४	३	२
२१	झूमरा	तिश्र	१४	१,४,११	८	२

ताल

(१) ताल : एकताला, जाति : खंड, मात्रा : ५ - $\frac{५}{\smile}$ |

ताली : १ पर खाली : नहीं है।

का मतलब पूरा ताल ५ मात्रा का है, जिसमें केवल एक ही खंड होगा तथा जो पाँच मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताली ताल की पहली मात्रा पर है तथा इसमें खाली नहीं है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । इस प्रकार का कोई भी ताल हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में नहीं है-

१	२	३	४	५
x				

(२) ताल - एकताला जाति – मिश्र मात्रा – ७ - $\frac{७}{\smile}$ ० |

ताली - १ पर खाली - नहीं है।

का मतलब पूरा ताल ७ मात्रा का है । जिसमें केवल एक ही खंड होगा तथा जो सात मात्रा से युक्त होगा । इसमें ताली ताल की पहली मात्रा पर है तथा इसमें खाली नहीं है। इस उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा। हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में सात मात्रा का रूपक ताल है पर उसकी ताली-खाली व खंड भिन्न है –

१	२	३	४	५	४	५	६	७
x								

(३) ताल - एकताला, जाति - चतुश्र   मात्रा -४- ४ / |

ताली - १ पर   खाली - नहीं है।

का मतलब पूरा ताल ४ मात्रा का है की जिसमें केवल एक ही खंड होगा तथा जो चार मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताली ताल की पहली मात्रा पर है तथा इसमें खाली नहीं है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । इस प्रकार का कोई भी ताल हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में नहीं है-

| १ २ ३ ४ |
| x |

(४) ताल - एकताला जाति – तिश्र   मात्रा – ३- 3 / ◡ / o

ताली -१ पर   खाली - नहीं है।

का मतलब पूरा ताल ३ मात्रा का है । जिसमें केवल एक ही खंड होगा तथा जो तीन मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताली ताल की पहली मात्रा पर है तथा इसमें खाली नहीं है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । इस प्रकार का कोई भी ताल हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में नहीं है तथा किसी भी संगीत परंपरा का यह शायद सबसे छोटा ताल है -

| १ २ ३ |
| x |

(५) ताल - चौताला, जाति - चतुश्र, मात्रा — १२- १२ / ||○○

ताली - १, ५,९,११ पर   खाली - ३, ७ पर

का मतलब पूरा ताल १२ मात्रा का है, जिसमें तीन खंड होगा तथा जो ४-४-४ मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताली ताल की पहली, पाँचवीं, नौवीं, ग्यारहवीं मात्रा पर है तथा इसमें खाली तीसरी, सातवीं मात्रा पर है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं.विश्णुनारायण भातखंडेजी की स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । इस प्रकार का कोई भी ताल हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में नहीं है-

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
x		0		२		0		३		४	

(६) ताल : तेताला, जाति : तिश्र, मात्रा : १२- १२ / ◡◡◡◡ / 0 0 0 0

ताली : १, ४, १० पर   खाली : ७ पर

का मतलब पूरा ताल १२ मात्रा का है, जिसमें चार खंड होंगे तथा जो ३-३-३-३ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहली, चार, व दसवीं मात्रा पर है तथा इसमें खाली छठी मात्रा पर है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । इस प्रकार का कोई भी ताल हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में नहीं है-

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
x			२			○			३		

(७) ताल - तेताला जाति - चतुश्र मात्रा — १६- $\frac{१६}{||||}$

काळ — मध्यकाल ताली -१, ५, १३ पर खाली - ९ पर

का मतलब पूरा ताल १६ मात्रा का है । जिसमें चार खंड होंगे तथा जो ४-४-४-४ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहल, पाँचवी, व तेराहवीं मात्रा पर है तथा इसमें खाली नौवीं मात्रा पर है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । हमारे यहाँ इसके समान त्रिताल नामक ताल है जिसकी ताली-खाली-खंड इ.बाते तेताला के समान ही है।

१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६
x	२	०	३

(८) ताल - रूपक जाति -चतुश्र मात्रा — ६- $\frac{६}{०|}$

ताली -१, ३ पर खाली - ५ पर

का मतलब पूरा ताल ६ मात्रा का है, जिसमें एक ही खंड होगा तथा जो छह मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताल की पहली, व तीसरी मात्रा पर ताली है तथा इसमें खाली पाँचवीं मात्रा पर है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में छह मात्रा का दादरा ताल है पर उसकी व इस ताल की ताली-खाली व खंड भिन्न है ।

१	२	३	४	५	६
x		२		०	

(९) ताल - रूपक, जाति - चतुश्र, मात्रा- ५- $\frac{५}{\circ ४}$

ताली -१, ३ पर   खाली - २ पर

का मतलब पूरा ताल ५ मात्रा का है, जिसमें एक ही खंड होगा तथा जो ५ मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताल की १ व ३ री मात्रा पर ताली है तथा इसमें खाली २ री मात्रा पर है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्ष्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा। हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में ५ मात्रा का कोई ताल नहीं है ।

१	२	३	४	५
x	०	२		

(१०) ताल – तेवरा   जाति – तिश्र   मात्रा – ७- $\frac{७}{\cup \circ\circ\circ}$

ताली - १, ४, ६ पर   खाली - ५, ७ पर

का मतलब पूरा ताल ७ मात्रा का है, जिसमें केवल एक ही खंड होगा तथा जो सात मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताली ताल की पहली, चौथी व छठी, मात्रा पर है तथा इसमें खाली पाँचवीं, व सातवीं मात्रा पर है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्ष्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में सात मात्रा का रूपक व तिव्रा ताल है पर उसकी व इस ताल की ताली-खाली व खंड भिन्न है-

१	२	३	४	५	६	७
x			२	०	३	०

(११) ताल – तेवरा जाति - तिश्र-त्रिपुट मात्रा – ७- $\frac{७}{◡ ○○○}$

ताली - १, ४, ६ पर खाली -५, ७ पर

का मतलब पूरा ताल ७ मात्रा का है, जिसमें केवल दो खंड होंगे । इसमें ताली ताल कि १, ४ व ६, मात्रा पर है तथा इसमें खाली ५ व ७ मात्रा पर है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । इस प्रकार का कोई भी ताल हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में नहीं है । ऊपर बताये गये तेवरा ताल में केवल एक ही खंड है, जो ७ मात्रा का है व इस तेवरा ताल में दो खंड क्रम से ३ व ४ मात्रा से युक्त है । इस प्रकार दोनों में भेद केवल खंड का ही है । हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में सात मात्रा का रूपक व तिव्रा ताल है पर उसकी व इस ताल की ताली-खाली व खंड भिन्न है-

१	२	३	४	५	६	७
x			२	०	३	०

(१२) ताल – झपताल जाति - तिश्र मात्रा – १०- $\frac{१०}{○◡○○◡}$

ताली - १, ३, ८ पर खाली - ६ पर

का मतलब पूरा ताल १० मात्रा का है, जिसमें दो खंड होंगे जो ५-५ मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताली ताल की पहली, तीसरी व आठवीं मात्रा पर है तथा इसमें खाली छठी मात्रा पर है। इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में दस मात्रा का झपताल है पर उसकी व इस ताल के केवल खंड भिन्न है पर ताली-खाली एक समान ही है-

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
x		२			०		३		

(१३) ताल - दादरा, जाति – तिश्र मात्रा – ६- ६/०।

ताली -१ पर खाली - नहीं है।

का मतलब पूरा ताल ६ मात्रा का है, जिसमें केवल एक ही खंड होगा तथा जो ६ मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताली ताल की पहली, मात्रा पर है तथा इसमें खाली नहीं है । इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में छ मात्रा का दादरा ताल है पर उसकी व इस ताल के केवल मात्रा समान है ।

१	२	३	४	५	६
x					

(१४) ताल – जलद दादरा मात्रा – ६- ६/०। या ६/ᴗᴗ

जाति – लधुद्रुतांग या दिव्य संकिर्ण ताली -१ पर खाली – ४ पर

का मतलब पूरा ताल ६ मात्रा का है, जिसमें केवल एक ही खंड होगा तथा जो ६ मात्रा से युक्त होगा। इसमें ताली ताल की पहली, मात्रा पर है तथा इसमें खाली ४थी मात्रा पर है । इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में निम्न प्रकार से लिखा जायेगा। हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में छ मात्रा का दादरा ताल है पर उसकी व इस ताल के मात्रा-ताली-खाली समान है परंतु केवल खंड भिन्न है ।

१	२	३	४	५	६
x			0		

(१५) ताल - दिपचंदी   जाति-नहीं बताई गई है मात्रा – १४- १४ / ऽ।ऽ।

ताली - १,४,११ पर   खाली - ८ पर

का मतलब पूरा ताल १४ मात्रा का है, जिसमें चार खंड होंगे तथा जो ३-४-३-४ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहली, चौथी, व ग्यारहवी मात्रा पर है तथा इसमें खाली आँठवी मात्रा पर है । इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में भी जो दिपचंदी ताल है उसके समान ही यह ताल है ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
x			२				0			३			

(१६) ताल - सूलफाक, जाति – तिश्र मात्रा – ८- ८ / ऽ0ऽ

ताली - १, ४,६ पर   खाली - ५ पर

का मतलब पूरा ताल ८ मात्रा का है, जिसमें तीन खंड होंगे तथा जो ३-२-३ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहली, व चौथी, व छठी मात्रा पर है तथा इसमें खाली पाँचवी मात्रा पर है । इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं.विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में आठ मात्रा का कहेरवॉ

ताल है पर उसकी व इस ताल के केवल मात्रा समान है पर खंड-ताली-खाली भिन्न है -

१	२	३	४	५	६	७	८
x			२	०	३		

(१७) ताल - सूलफाक जाति -चतुश्र मात्रा – १०- १० / |०|

ताली - १, ५, व ७ पर खाली - ६ पर

का मतलब पूरा ताल १० मात्रा का है, जिसमें तीन खंड होंगे तथा जो ४-२-४ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहली, चौथी व सातवी मात्रा पर है तथा इसमें खाली छठी मात्रा पर है । इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में दस मात्रा का सूलफाक इस ताल के समान ही है परंतु उस में खाली नहीं है ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
x				२	०	३			

(१८) ताल - आडा चौताल जाति - चतुश्र मात्रा – १४- १४ / ०|||

ताली -१, ३,७,११ पर खाली - २ पर

का मतलब पूरा ताल १४ मात्रा का है । जिसमें चार खंड होंगे तथा जो २-४-४-४ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहली, व तीसरी, सातवी, ग्यारहवीं मात्रा पर है तथा इसमें खाली दूसरी मात्रा पर है । इसे उत्तर

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में प्रयुक्त आडा चौताल व इस आडा चौताल की केवल मात्र व ताली समान है ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
X	०	२				३				४			

(१९) ताल - आडा चौताल जाति – तिश्र मात्रा -११- ११ / ०ᴗᴗᴗ

ताली -१,३,६,९ पर खाली - २ पर

का मतलब पूरा ताल ११ मात्रा का है । जिसमें चार खंड होंगे तथा जो २-३-३-३ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहली, तीसरी, छठी, व नौवीं मात्रा पर है तथा इसमें खाली दूसरी मात्रा पर है । इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी के स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । इस प्रकार का कोई भी ताल हमारे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में नहीं है-

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
×	०	२			३			४		

(२०) ताल - झंपा, जाति -चतुश्र मात्रा – ७- ७ / ᴗ०।

ताली -१, २, ४ पर खाली - ३ पर

का मतलब पूरा ताल ७ मात्रा का है । जिसमें दो खंड होंगे तथा जो ३ व ४ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहली, दूसरी, व चौथी , मात्रा पर है तथा इसमें खाली तीसरी मात्रा पर है । इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी की स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा

जायेगा । हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में दस मात्रा का झँपा ताल है व उसकी व इस ताल की मात्रा-ताली-खाली व खंड भिन्न है- ।

१	२	३	४	५	६	७
x	२	०	३			

(२१) ताल – झूमरा   जाति - तिश्र   मात्रा -१४- $\frac{१४}{७|७|}$

ताली- १, ४, ११ पर   खाली - ८ पर

का मतलब पूरा ताल १४ मात्रा का है, जिसमें २ खंड होंगे तथा जो ७-७ मात्रा से युक्त होंगे । इसमें ताली ताल की पहली, चौथी, ग्यारहवीं मात्रा पर है तथा इसमें खाली आठवी मात्रा पर है । इसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में तथा पं. विश्णुनारायण भातखंडेजी की स्वरलिपि में इसे निम्न प्रकार से लिखा जायेगा । यह ताल हमारी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के झूमरा ताल के समान है परंतु केवल खंड भिन्न है ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
x			२				०			३			

इन बाईस तालों में कुछ ताल ऐसे भी पाए गये हैं, जिनमें खाली है ही नहीं तथा सिर्फ ताली ही है । ऐसे कुल पाँच ताल हैं, जो इस प्रकार है।

(१) खंड जाति का पाँच मात्रा युक्त एकताला

(२) मिश्र जाति का सात मात्रा युक्त एकताला,

(३) चतुश्र जाति का चार मात्रा युक्त एकताला

(४) तिश्र जाति का तीन मात्रा युक्त एकताल तथा

(५) तिश्र जाति का छह मात्रा युक्त दादरा

यह पाँच ताल केवल ऐसे हैं, जिन तालो में खाली का प्रयोग नहीं होता है या यह पाँच ताल खाली रहित ताल है ।

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में खाली रहित तालों का प्रयोग बहुत कम दिखाई देता है । पश्तो, कव्वाली, शूलफाक, मणि, यति शेखर, गणेश, व तिव्रा यह ताल भी खाली रहित तालो की श्रेणी में पाये जाते है ।

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में किसी भी एक ताल का एक ही प्रकार होता है तथा उसकी जाति, मात्रा, खंड, भी निश्चित ही होते हैं । वे दक्षिणी ताल पद्धति के अनुसार जाति के अनुरूप बदलते रहते हैं ।

आगे हम उस्ताद मौलबक्ष जी की स्वरलिपि की तुलना पं. विश्णु नारायण भारखंडे जी व पं. विश्णु दिगंबर पलुस्कर जी से करके उन तीनों स्वरलिपिकारों के विभिन्न सांगीतिक अलंकारों के लिये प्रयुक्त विभिन्न संकेत-चिह्नों को समझेंगे। सर्वप्रथम हम तीनों स्वरलिपिकारों के विभिन्न सांगीतिक अलंकारों के लिये प्रयुक्त विभिन्न संकेत चिन्हों को एक तालिका के माध्यम से समझकर फिर उस्ताद मौलबक्ष जी की स्वरलिपि कि तुलना पं. विश्णु नारायण भारखंडे जी व पं. विश्णु दिगंबर पलुस्कर जी से करेंगे ।

तीनों स्वरलिपिकारों के स्वर लंबाने के विभिन्न चिह्न :-

विवरण	मौलाबक्षजी के चिह्न	भातखंडेजी के चिह्न	पलुस्करजी के चिह्न
चार मात्रा के लिये,	सा 8	सा - - -	सा ×
दो मात्रा के लिये,	स S	सा -	सा h
एक मात्रा के लिये,	सा	सा	सा —
आधी मात्रा के लिये,	स्	-,सा ‿	सा o
१/४ मात्रा के लिये,	सॖ	सासासासा ‿	सा ‿
१/८ मात्रा के लिये,	सा⅄	सासासासासासासासा ‿	सा ‿‿

विवरण	मौलाबक्षजी के चिह्न	भातखंडेजी के चिह्न	पलुस्करजी के चिह्न
शुद्ध	सा	सा	सा
कोमल	रेंॅ	रे॒	रे॒
तीव्र	म॒	मं॑	म्र
मध्य सप्तक	सा	सा	सा
मंद्र सप्तक	प्र	प़	पं
तार सप्तक	म̄	मं	मं॑
शब्दों को लंबाने के लिये	कोई चिह्न नहीं थे।	रा ऽ ऽ म अवग्रह	रा • • म बिन्दी
स्वरों को लंबाने के लिये	लधु-गुरू-द्रुत इ. चिह्नों का प्रयोग करते थे।	रा - - म लकीर	रा ऽ ऽ म अवग्रह
मींड	यति का प्रयोग करते थे।	⌒ सा म	⌒ सा म
कण	कण का प्रयोग नहीं करते थे।	गसा	गसा
सम	‾•	x	१
खाली	7	o	+
ताल में अन्य तालीयाँ दिखाने के लिये	— आड़ी लकीर का प्रयोग होता था।	२,३,४,आदि संख्या लिखी जाती है।	२,३,४, आदि संख्या लिखी जाती है।
अति मंद्र	सा (नीचे ‾•)	नि̤	कोई स्पष्टिकरण नहीं दिया गया है।
अति तार	प (ऊपर •‾)	पं̈	कोई स्पष्टिकरण नहीं दिया गया है।
खटका	यतियों का प्रयोग करते थे।	(प)= धपमप	(प)= धपमप
चूप रहने के लिये	कोई स्पष्टिकरण नहीं दिया गया है।	˩	कोई स्पष्टिकरण नहीं दिया गया है।

३.३. मौलाबक्ष जी, भातखंडेजी व पलुस्करजी की स्वरलिपि की तुलना

ऊपर बताये गये तीनों विद्वानों के स्वरलिपि के सांगीतिक अलंकारों व उनके चिह्नों में निम्न प्रकार से विविधता दिखाई देती है । जिसे हम निम्न प्रकार से समझने का प्रयास करेंगे ।

१) पलुस्करजी की स्वरलिपि में अति मंद्र, अति तार के लिये चिह्नों का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है परंतु मौलाबक्षजी व भातखंडेजी के स्वरलिपियों में इनके चिह्नों का स्पष्टिकरण अवश्य दिया गया है ।

२) भातखंडेजी व पलुस्करजी ने कण स्वर के लिये समान रूप से चिह्न बताये है परंतु मौलाबक्ष ने अपनी स्वरलिपि में कण स्वर का प्रयोग नहीं किया है ।

४) भातखंडेजी व पलुस्करजी ने अपनी स्वरलिपि में बंदिश में स्थाई-अंतरा लिखकर बंदिश के दो भागो को स्पष्ट किया है परंतु मौलाबक्षजी ने अपनी स्वरलिपि में बंदिश के स्थाई-अंतरा के विषय कोइ स्पष्टीकरण नहीं दिया है जिससे कलाकार या विद्यार्थीओं को बंदिश के स्थाई-अंतरा विभाग को समझने में कुछ कठिनाई आ सकती है परंतु मौलाबक्षजी की स्वरलिपि का अभ्यास करने से यह मालूम होता है की उनकी स्वरलिपि में जिन शब्दो के बाद यह चिह्न या निशानी हो तो उसके आगे के शब्द अंतरे के होने की संभावना है ।

५) भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में ताल की गति के लिये "लय" शब्द प्रयुक्त किया है; जब कि मौलाबक्ष जी ने ताल की गती के लिये "काळ" या "काल"शब्द प्रयुक्त किया है ।

६) भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में ताल के तीन विभिन्न लय बताए हैं । जैसे-विलंबित, मध्य व द्रुत । जब कि मौलाबक्ष जी ने ताल के तीन काल विलंबित, मध्य व द्रुत को तो माना ही है । परंतु उसके साथ-साथ अन्य दो भेद "मध्य विलंबित" व "मध्य द्रुत " को भी बताया है।

७) भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में ताल की कुल पाँच जातियाँ "खंड, मिश्र, तिश्र, संकीर्ण व चतुश्र," मानी है । परंतु मौलाबक्षजी ने इन पाँच जातियों के साथ-साथ "संगीतानुभव" पुस्तक में "लघुद्रुतांग" व पुस्तक"बाल संगीत माला" में "दिव्य संकीर्ण " नामक दो अतिरिक्त जातियाँ बताई है, जिनकी मात्रा छह मानी जाती है ।

८) भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में बंदिश समाप्ति के लिये किसी चिह्न का प्रयोग नहीं किया है । परंतु मौलाबक्षजी ने बंदिश समाप्ति के लिये चिह्न का प्रयोग किया है, जिससे कलाकार, श्रोता व विद्यार्थीओं को यह मालूम हो सके कि बंदिश को कहाँ समाप्त करना है । उनकी स्वरलिपि का अभ्यास करने से यह मालूम होता है की उनकी स्वरलिपि की एक विशषता यह भी है की जिस बंदिश में तान दी गई हो उस बंदिश में समाप्ति का चिह्न ताने समाप्त होने पर दीया जाता है ।

९) मौलाबक्षजी ने बंदिश में विश्रांती के स्थान का भी चिह्न दिया है जो भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में नही बताये है ।

१०) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में बंदिश के ऊपर राग, ताल, ताल की जाति, मात्रा ई. विवरण की परंपरा दिखाई देती है परंतु भातखंडे जी व पलुस्कर जी की स्वरलिपि में राग, ताल व लय का विवरण दिया करते थे ।

११) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में बंदिश की पुनरावृत्ति या बंदिश की विशिष्ट पंक्तियों की पुनरावृत्ति के लिये संकेत या चिह्न बताये गये है परंतु भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में बंदिश की पुनरावृत्ति या बंदिश की विशिष्ट पंक्तियों की पुनरावृत्ति के लिये कोई भी संकेत या चिह्न नहीं बताये है । जिसका विवरण इसी प्रकरण में स्वरलिपि में उपयोगी अन्य चिह्नों के अंतर्गत दिया गया है ।

१२) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में बंदिश में शब्दों को लंबाने के लिये किसी भी चिह्न या निशानी का प्रयोग नहीं किया है, जबकि भातखंडे जी ने शब्दों को लंबाने के लिये "अवग्रह" तथा पलुस्करजी ने बिन्दी का प्रयोग शब्दों को लंबाने के लिये किया है ।

१३) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में बंदिश के हरेक पंक्ति के आगे या पहले उस पंक्ति को कौन-से सप्तक से प्रारंभ करना है इसके लिये विशेष चिह्न का प्रयोग किया है । परंतु भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में इसके लिये किसी भी चिह्न प्रावधान नहीं रखा है ।

१४) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में बंदिश में बंदिश की हरेक पंक्ति के आगे या पहले उस बंदिश के ताल की मात्रा तथा उसके खंड में कितनी मात्रा होगी, यह निर्देशित किया जाता था, जो भातखंडे जी व पलुस्कर जी की स्वरलिपि में नहीं बताया जाता था ।

१५) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में बंदिश का विषय तथा उसके शब्दों को समूह में बताया जाता था जिससे कलाकार, श्रोता, व विद्यार्थीओं को बंदिश समझने में आसानी हो, परंतु मौलाबक्षजी की संगीतानुभव पुस्तक में बंदिश का विषय तथा उसके शब्दों को समूह में नहीं बताया गया है ।

पलुस्करजी की स्वरलिपि में बंदिश के शब्दों को बताया जाता था । परंतु भातखंडेजी की स्वरलिपि में ये दोनों नहीं बताये जाते थे ।

१६) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि के अनुसार कलाकार व विद्यार्थीयों को गाने में स्वतंत्रता बहुत कम मिलती थी, क्योंकी मौलाबक्षजी गायन-वादन में कि जाने वाली हरेक छोटी से छोटी क्रियाओं को स्वरबध्ध करके हरेक रचना को पहले से ही निर्धारित कर दिया था की किसी विशिष्ट बंदिश को कलाकार किस प्रकार से गायेगा । जबकि भातखंडे जी व पलुस्कर जी की स्वरलिपि के अनुसार कलाकार व विद्यार्थीयों को गाने में स्वतंत्रता बहुत अधिक मिलती थी ।

१७) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में ताल पद्धति कर्नाटकी संगीत पद्धति से ली गई है । इसीलिए मौलाबक्षजी की स्वरलिपि के ताल हिंदुस्तानी संगीत पद्धति से भिन्न हैं । मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में ताल की जाती पर उसकी मात्रा अवलंबित होती है, जिससे तिश्र जाति के तेताला में १२ मात्राएँ होगी तथा चतुश्र जाती के तेताला में १६ मात्रा होगी । उसी प्रकार अन्य तालों में भी यही प्रणाली प्रयुक्त होगी । परंतु भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में तालो को जातीयो में विभाजीत अवश्य किया है परंतु ताल की मात्रा उनकी जाती के अनुसार बदलती नहीं है ।

१८) मौलाबक्षजी की स्वरलिपि में आवाज छोटी-बड़ी करने के मृदंग यति का प्रयोग किया है परंतु भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में इस क्रिया के लिये किसी चिह्न का प्रयोग नहीं किया है ।

१९) मौलाबक्ष ने पाँच ताल जातियों के वर्णन के पश्चात उस में लगने वाले समय या अवधि को तथा काल में भी कौन से काल में कितना समय या

अवधि लगेगी, यह बताया गया है, परंतु भातखंडे जी व पलुस्कर जी ने अपनी स्वरलिपि में इस क्रिया का कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है ।

मौलाबक्ष, भातखंडेजी व पलुस्करजी के स्वरलिपि में समानता ।

तीनों ही स्वरलिपिकारों की स्वरलिपि में निम्न प्रकार से समानता पाई जाती है ।

१) तीनों ही स्वरलिपिकारों ने शुद्ध स्वर के लिये किसी भी चिह्न या आकृति का प्रयोग नहीं किया है ।

२) तीनों ही स्वरलिपिकारों ने मध्य सप्तक के स्वर के लिये किसी भी चिह्न का प्रयोग नहीं किया है ।

३) तीनों ही स्वरलिपिकारों की स्वरलिपि में में समानता से अधीक विभिन्नता पाई जाती है ।

४) तीनों ही स्वरलिपिकारों ने तीन स्वर सप्तक मंद्र, मध्य व तार माने हैं ।

५) तीनों ही स्वरलिपिकारों ने स्वरों के तीन स्वरूप कोमल, शुद्ध व तीव्र माने हैं ।

६) तीनों ही स्वरलिपिकारों ने ताल के विभिन्न खंडों को दर्शाने के लिये खड़ी लकीर का प्रयोग किया है ।

७) तीनों ही स्वरलिपिकारों ने प्रत्येक बंदिश की लय या काल पहले से निर्धारित करते हुए बंदिश के शिर्ष पर ही उसका विवरण दे दिया करते थे ।

८) तीनों ही स्वरलिपिकारों ने स्वरों को कितनी देर तक लंबाना है, उसके चिह्न भी बताये है ।

अब आगे हम स्वरलिपि के द्वारा होने वाले विभिन्न लाभ व हानियाँ के विषय में चर्चा करेंगे ।

३.४. संगीत में स्वरलिपि के लाभ और हानियाँ

जिस प्रकार सिक्के के दो पहलू होते हैं, उसी प्रकार हरेक आविष्कार या व्यवस्था के लाभ और हानियाँ दिखाई देती हैं । कुछ ऐसी ही स्थिति "स्वरलिपि" के विषय में भी पाई जाती है । जिस आविष्कार या व्यवस्था को बनाने में हमारे शास्त्रकारों, तत्वचिंतकों, गुणीजनों ने संपूर्ण जीवन व्यतीत कर दिया, ऐसे "स्वरलिपि" के विषय में भी आज हमें उसके द्वारा होने वाले लाभ या हानियाँ दिखाई देते हैं । यह बात और है कि स्वरलिपि व्यवस्था से हमें निश्चित ही अधिक से अधिक लाभ ही हुए हैं । परंतु कुछ हानियाँ भी हम से छिपी नहीं हैं ।

स्वरलिपि के विषय में होने वाले लाभ और हानियों के साथ-साथ इस विषय में हमारी आज की आवश्यकता पर भी इस प्रकरण में चर्चा की जायेगी ।

संगीत शिक्षा की दो पद्धतियाँ प्रमुख है । एक गुरु परंपरा पद्धति दूसरी स्वर-लिपि पद्धति । प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक प्रधानता गुरु परंपरा शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी । इस शिक्षा प्रणाली में शिष्य, गुरु के सान्निध्य में संगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे । किन्तु मध्यकाल के उपरान्त आधुनिक काल में स्वरलिपि पद्धति अनुसार शिक्षण की व्यवस्था की गई है । स्वरलिपि का स्थान संगीत शिक्षण में अत्यंत महत्वपूर्ण है । स्वरलिपि के आधार पर संगीत की शिक्षा अधिक वैज्ञानिक हो गई है । आज कल संगीत का जो अत्यधिक प्रचार और प्रसार हो रहा है, उसका एक कारण स्वरलिपि मूलक संगीत शिक्षा माना जा सकता है ।

जिस समय स्वरलिपि का प्रचार नहीं था, उस समय गुरु शिष्यों को मौखिक रुप से संगीत की शिक्षा देता था । शिष्य उसे कंठस्थ करता और ताल और लय के साथ गेय पदों को गाया करता था । किन्तु उस शिक्षा प्रणाली में संगीत का अध्ययन सुविधात्मक नहीं होता था । गुरु अपने शिष्यों को एक बार जो बताते थे, उसका अभ्यास करने में शिष्यों को अत्यधिक समय लगाना पड़ता था । संगीत सीखने के बाद शिष्य को राग के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता था । वे केवल गायन-वादन का प्रदर्शन करते थे । किन्तु उन्हें रागों का शास्त्रीय ज्ञान उतना नहीं हो पाता था, जितना आधुनिककालीन छात्रों को होता है ।

आधुनिक काल में स्वरलिपि के द्वारा संगीत सीखने में बहुत बड़ी सुविधा हो गई है । इसके द्वारा संगीत शिक्षक कम से कम समय में और एक ही साथ अधिक छात्रों को संगीत शिक्षा भली भाँति दे सकता है । संगीत शिक्षक कक्षा में सर्व-प्रथम छात्रों को गीतों की स्वरलिपि लिखा देता है । तदुपरान्त वह स्थायी व अन्तरा की एक-एक पंक्ति के स्वरों तथा स्वरांकित शब्दों को क्रमशः बोलकर सिखाता जाता है । छात्र उसका अनुकरण करते हैं । सीखते समय छात्रों को इस बात का ज्ञान रहता है कि गीत के प्रत्येक शब्द में किन-किन स्वरों का प्रयोग होता है ।

उन्हें यह भी सम्यक् ज्ञात हो जाता है कि स्थायी और अन्तरा के प्रत्येक अवयव में किन-किन स्वरों पर कम और किन-किन स्वरों पर अधिक विश्राम किया जाता है । स्वरलिपि का आश्रय न लेने से गायक जितनी बार उन गेय पदों की पंक्तियों को दुहराता है, उतनी बार उन गेय पदों में अन्तर उत्पन्न होता रहता है । इस विषमता से गायन और वादन में वैज्ञानिकता नहीं आने पाती । किन्तु स्वरलिपि के आधार पर जो संगीत सिखाया जाता है, वह अत्याधिक वैज्ञानिक होता है ।

सरगम, लक्षणगीत, ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठप्पा, ठुमरी और तराना आदि जितनी गीत शैलियाँ प्रचलित हैं, उन सबकी शिक्षा स्वरलिपि के आधार पर दी जाती है । स्वरलिपि के अध्ययन और अभ्यास में सबसे बड़ी सुविधा यह है कि किसी एक गीत शैली का सम्यक् अध्ययन और अभ्यास होने से उस शैली के अन्तर्गत जितने गीत होते हैं, उनके सीखने में विशेष श्रम और समय की अपेक्षा नहीं होती । छात्रों में गाने और बजाने कि अभूतपूर्व क्षमता उत्पन्न होती है ।

स्वरलिपि के माध्यम से संस्थागत संगीत शिक्षा की सुव्यवस्था के साथ-साथ व्यक्तिगत संगीत-शिक्षा में विशेष लाभ पहुँचता है । आधिकांश छात्र अपने निवास स्थान पर स्थित होकर बिना किसी शिक्षक की सहायता लिए हुए संगीत कला का अध्ययन करते हैं । स्वरलिपि का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है । स्वरलिपि के अन्तर्गत शुद्ध और विकृत १२ स्वरों, तालों और मात्राओं के ज्ञान के लिए सांकेतिक चिह्न निर्धारित किये गये हैं । उन चिन्हों के आधार पर संगीत के प्रारम्भिक अध्ययन के पश्चात कोई भी छात्र सरलता और सुगमता पूर्वक संगीत का अध्ययन और अभ्यास कर सकता है । स्वरलिपि के माध्यम से संगीत की शिक्षा प्राप्त करनेवाला छात्र दूसरों को सुविधा के साथ संगीत की शिक्षा दे सकता है । अपना विचार और भाव व्यक्त करने के लिए जैसे भाषा की आवश्यकता होती है, वैसे ही विभिन्न गायन और वादन शैलियों की अभिव्यक्ति के लिए स्वरलिपि की अत्यन्त आवश्यकता है ।

स्वरलिपि से सबसे बड़ा लाभ यह है कि छात्रों में किसी भी राग के गीतों को सम्बद्ध करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है । इसके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण लाभ यह है कि किसी महान संगीतज्ञ की बन्दिश का तत्काल ज्ञान होता है । स्वरलिपि का आश्रय न लेने से उस बन्दिश को सर्वप्रथम कंठस्थ करना पडता है । बहुत पर्याप्त श्रम तथा समय की अपेक्षा होती है । किन्तु जिस

छात्र को स्वरलिपि का अच्छा ज्ञान होता है, वह तत्काल बंदिश को सुनकर उसे स्वर-बद्ध कर लेता है ।

बंदिश को सुनकर उसे स्वरांकित करने के बाद छात्र कालांतर में उसका अनुकरण और अभ्यास करके उस बंदिश को उसी प्रकार प्रस्तुत कर सकता है । इस प्रकार कम से कम समय और श्रम में स्वरलिपि के द्वारा वह वस्तु प्राप्त हो जाती है, जो अधिक प्रयत्न या श्रम करने पर भी साध्य नहीं है । बंदिशों के अतिरिक्त महान संगीतज्ञों के तान लेने का ढंग अलग होता है । उनके तानों में जो विविधता पायी जाती है वह प्रभावोत्पादक और आकर्षक होती है ऐसी तानों को मौखिक अनुकरण करना साधारण कार्य नहीं है । तत्काल उन तानों का संस्कार अन्य संगीतज्ञों के हृदय में प्रतिष्ठापित भले ही हो जाता है किन्तु बाद में उसका स्मरण नहीं रह जाता है । अतः स्वरलिपि के द्वारा उन रोचक और आकर्षक तानों को सुनकर लिपि बद्ध कर लने से वह सार्वजनिक और सर्वकालिक हो जाता है ।

गायन में बोल तानों का बहुत बड़ा महत्व है । टप्पा तथा ठुमरी जैसी बहुतसी भाव प्रधान गीत शैलियाँ ऐसी हैं, जिनमें बोल-आलापों और बोल-तानों की बहुलता पाई जाती है । इन गीतों में बोल तानों और बोल-आलापों से ही रोचकता, आकर्षण और चमत्कार की अभिवृद्धि होती है । इन दोनों उपकरणों के अनेक प्रकार होते हैं । आलाप और तान की विभिन्न शैलियों के फलस्वरुप उनके स्वरों में सम्बद्ध गीतों के वर्ण, पद और वाक्य अत्यन्त मधुर और रसोत्पादक हो जाते हैं । अतः बोल-आलापों और बोल-तानों का अध्ययन और अभ्यास अत्यन्त आवशयक है । इनका अध्ययन और अभ्यास एकमात्र स्वरलिपि के माध्यम से ही संभव है । एक संगीतज्ञ अपने से महान संगीतज्ञ के बोल-तानों का श्रवण कर उसे तुरंत स्वरलिपि बद्ध कर लेता है । ऐसा करते-करते तत्स्तरीय बोल तानों

तथा आलंकारिक तानों के निर्माण करने की विधि स्वयं गृहीत होने लगती है । अतएव स्वरलिपि के द्वारा संगीत का अध्ययन और अभ्यास करने से भी साधारण छात्र महान् संगीतज्ञ बन सकते है ।

स्वरलिपि पद्धति के लाभ :-

१. "स्वरलिपि " पद्धति के बनने से विद्यार्थीयों को संगीत सीखने में सरलता हो गई ।

२. इस पद्धति के आरंभ होने से छपाई द्वारा विभिन्न गीतों को स्वरलिपि बद्ध करके उसे वास्तविक स्वरूप में जनता के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है ।

३. इस व्यवस्था से समय की बचत तो हुई, साथ-साथ हमारी भारतीय संस्कृति को भी लुप्त होने से बचाया गया ।

४. भावी पीढ़ी के लिये पुरानी बंदिशें उपलब्ध करवाने में स्वरलिपि पद्धति का बहुमूल्य योगदान रहा है ।

५. स्वर के कोमल, तीव्र आदि अवस्थाओं को, तथा सप्तक के तीनों भेदों को चिह्नित करने से लिखित स्वरों का रूप समझने में आसानी हो गई ।

स्वरलिपि पद्धति की हानियाँ :

१. संगीत अदृश्य कला है । राग में स्वरों की बारीकियाँ, इनके भेद लिखकर बताना असंभव है । लिखकर केवल मात्र संकेत ही किया जा सकता है ।

२. स्वरलिपि द्वारा नाद के छोटे-बड़ेपन को व्यक्त नहीं किया जा सकता है ।

३. राग के स्वरों की भावुकता को केवल व्यक्त किया जा सकता है, लिखा नहीं जा सकता; अर्थात् मुर्कि, कण, गमक, खटका, जमजमा, आदि सूक्ष्म कियाओं को गा-बजाकर ही अधिक अच्छे ढग से स्पष्ट किया जा सकता है ।

इस प्रकार स्वरलिपि पद्धति में कुछ दोष होते हुए भी यह व्यवस्था या पद्धति काफी उपयोगी व आधारभूत है । उस्ताद मौलाबक्ष जी का यह कार्य या प्रयास बहुत सराहनीय व वंदनीय है । यदि विद्यार्थीयों के सामने राग संबंधी जानकारी स्वरलिपि बद्ध रूप से हो, तो गुरुमुख से दी जाने वाली विद्या को जल्दी ही समझ सकता हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सुची-प्रकरण-३

१. Bakhle j, (2005), Two Man and Music: Nationalism in the Making of an. Indian Classical Tradition, Oxford University Press, New York, 25, p. 54.

२. **https://www.persee.fr**

३. Bakhle j, (2005), Two Man and Music p.58.

४. वही पृ. ५२-६० ।

५. वही पृ. ३८, ३९ ।

६. मौलाबक्ष, संगीतानुभव, १८८८, पृ. ।

७. Kippen, j. (2006).Gurudev's Drumming Legacy: Music, Theory and Nationalism in the mrdang aur table vadanpaddhti of gurudev patwardhan, Aldershot: ashgate. p.53.

८. वही पृ.५४ ।

९. Michael d rosse, j.b. (2010).music school and societies in Bombay c.1864-1937, (f, joep bor, Ed.) Hindustani music thirteen to twentieth centuries. p. no. 294.

१०. Kippen, j. (2006).Gurudev's Drumming Legacy: p. 54.

११. Michael d rosse, j.b. (2010).music school and societies in Bombay p.no.297.

१२. Kippen, j. (2006).Gurudev's Drumming Legacy: .p.57.

१३. Bakhle j, (2005) p.no. 68.

१४. वही पृ.६८ ।

१५. Nemai chand bural, (1974). New language of music monograph (Abstract), visva-bhartiuniversity, santiniketan.june 5, Calcutta, p.no.3.

१६. Michael d rosse, j.b. (2010).music school and societies in Bombay p.no 317.

१७. Bakhle j, (2005) p.no.64.

१८. वही पृ. ६६ ।

१९. वही पृ. ६६ ।

२०. वही पृ. ६७ ।

२१. वही पृ. ६७ ।

२२. Emmie Te Nijenhuis (2004) Notation of south Indian music, (Retrieved From https://iias.asia/oideion/journal/issue04/nijenhuis/1.html (19-01-2018).